June
2024

अरफ़ात किरण

मासिक रायबरेली

अज़ीम क़ुर्बानी

"वह "अज़ीम क़ुर्बानी" जिसको देकर हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सलाम) जिस्मानी क़ुर्बानी से बच जाते हैं वह उनकी "रूहानी क़ुर्बानी" है। रूहानी क़ुर्बानी जिस्मानी क़ुर्बानी के मुक़ाबले में यक़ीनन बहुत अज़ीम क़ुर्बानी है। जिस्मानी क़ुर्बानी की तकलीफ़ तो एक लम्हे की बात है, मगर रूहानी क़ुर्बानी तो किसी सच्चे काम की ख़ातिर सारी ज़िन्दगी की जीते जी की क़ुर्बानी है, जिसमें मरकर नहीं बल्कि जी कर हक़ की राह में तकलीफ़ और मुसीबत को बर्दाश्त करना हर वक़्त मौत के लिए तैयार रहना है।"

सैय्यदुत्ताएफ़ा अल्लामा सैय्यद सुलेमान नदवी (रह०)
(मक़ालात-ए-सुलेमान: ३१०)

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

जश्न-ए-काबा का दिन

"रूहानियत की दुनिया में बहार का मौसम आ गया, काबा इस्लाम का जियोग्राफ़िकल मरकज़ है, उसके जश्न का दिन आ गया, दूर–दूर से, पूरब से और पश्चिम से, उत्तर से और दक्खिन से खींच–खींच कर क़ाफ़िले पर काफ़िले चले आ रहे हैं। बूढ़े भी, जवान भी, लाग़र भी और पहलवान भी, गोरे भी, काले भी, आलिम, फ़ाज़िल, कामिल भी, नादान, अनपढ़, जाहिल भी, पैदल और सवारियों पर, ऊंटो और मोटरों और लारियों पर, इस्लामी क़मरी (चांद के महीने) साल के बारहवें महीने, ज़िलहिज्जह या बक़राईद का पहला हफ़्ता आया कि हज़ारों बल्कि कभी तो लाखों का जमाव हो गया मक्का की गलियों में। हरम शरीफ़ के साफ़–सुथरे सहन और बड़े–बड़े दालानों में, लब्बैक–लब्बैक की सदाएं हर तरफ़ बुलन्द, हर बुलन्दी चढ़ते हुए, पर पस्ती पर उतरे हुए, सवारी पर सवार होते हुए, मस्जिद का रुख़ करते हुए, हर तरफ़ यही ज़िक्र यही फ़िक्र, एहराम की चादरें कांधों पर, तौहीद के नारे ज़बानों पर, आठ तारीख़ से लेकर तेरह तारीख़ तक, अरफ़ात और मुज़दलिफ़ा में हाजियों का हुजूम, तकबीर व तहलील, तवाफ़ व कुर्बानी की धूम, जाइरों का मजमा, अभी कूच, अभी मक़ाम, सफ़ा व मरवा के दरमियान लपकते जा रहे हैं, दौड़ते जा रहे हैं, अरफ़ात के चटियल मैदानों में अपने गुनाहों को याद करते जाते हैं, गिड़गिड़ाते जाते हैं, काबा के गिर्द घूम रहे हैं, चक्कर पर चक्कर लगा रहे हैं, मिना में कुर्बानियां कर रहे हैं, शैतान के मुजस्समों पर कंकरियां बरसा रहे हैं, तौहीद का कलिमा हर हाल में पढ़ते हुए, रब का नाम हर आन जपते हुए...यह एहकाम हुए मरकज़ तक पहुंच जाने वाले ख़ुश नसीबों के।

अल्लाहु अकबर अल्लाहु अकबर ला इलाहा इल्लल्लाहु वल्लाहु अकबर अल्लाहु अकबर वलिल्लाहिल हम्द, बड़ाई आप में है, सिर्फ़ आप में है, कोई आपके सिवा माबूद नहीं, कोई आपके सिवा मक़सूद नहीं, बड़े सिर्फ़ आप हैं, सिर्फ़ आप हैं, कमालात हर क़िस्म के जमा हैं, सिर्फ़ आपकी ज़ात में, आपकी सिफ़ात में। नौ तारीख़ की फ़ज्र की नमाज़ से यह तस्बीह शुरू हो गई और जारी रहेगी, इसकी गूंज हर फ़र्ज़ नमाज़ के बाद तेरह तारीख़ की अस्र तक, गोया तेईस नमाज़ों के साथ और दस तारीख़ की सुबह को सब बड़े–छोटे मिलकर ईद की नमाज़ पढ़ेंगे शहर से बाहर ईदगाह में और इस नमाज़ में भी हर मर्तबा कई–कई बार ज़ाएद तकबीरें कहेंगे, जिस्म की सफ़ाई के साथ, लिबास की सुथराई के साथ नमाज़ पढ़ने जाएंगे, अमीर–ग़रीब, आक़ा–ख़ादिम एक दूसरे को गले लगाएंगे, रूह की बालीदगी के साथ, क़ल्ब की पाकीज़गी के साथ वापस आएंगे, अल्लाह का नाम पुकारते जाएंगे, तौहीद की मुनादी करते आएंगे, यह कौन बताए क्या–क्या मांगेंगे, क्या–क्या पाएंगे, कैसी–कैसी दौलत अपने साथ लाएंगे, पैसे वाले कुर्बानियां करेंगे और ज़बान की लज़्ज़तों में, ख़्वान (थाल) की नेमतों में अपने से भी पहले मुफ़लिसों, ग़रीबों, अज़ीज़ों, क़रीबियों का हिस्सा निकाल कर रखेंगे। यह आदाब हुए मरकज़ सू दूर आलमे इस्लाम के कोने कोने में रहने वालों, बसने वालों के। आज जश्न है काबा का, दीने तौहीद के माद्दी मरकज़ का, इसमें शिरकत से महरूम न पास वाले रहें न दूर वाले।"

मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी (रह०)

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:06 जून २०२४ ई० वर्ष:16

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुबहान नाखुदा नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ॉ नदवी

मुद्रक

मो० हसन नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

क़ुर्बानी की फ़ज़ीलत

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"जिस शख़्स ने ख़ुशदिली के साथ सवाब की उम्मीद में क़ुर्बानी की तो यह क़ुर्बानी उसके लिए दोज़ख़ से हिफ़ाज़त का ज़रिया होगी।"

(अल मअजम अलकबीर लित्तिबरानी: 2736)

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कजुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू०पी०.229001

प्रति अंक 15रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कजुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू०

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

बहुज़ूर सैय्यद-ए-कौनेन
عليه السلام

रईसुश्शाकिरी नदवी (रह0)

तेरे पैग़ाम की ख़ुशबू जो मयस्सर आए
ज़िन्दगी हासिल दुनिया-ए-यक़ीं हो जाए

हो किसी दौर में दुनिया को मसीहा की तलाश
सरे फ़ेहरिस्त तेरा इस्मे गिरामी आए

यह भी काफ़ी है मरीज़े ग़मे दौरां के लिए
तेरे दामन की जो ऐ काश हवा मिल जाए

तेरी राहों में मुसाफ़िर का मुक़द्दर चमके
हर क़दम हुस्ने तसव्वुर में नज़र खो जाए

जब भी पूछे कोई मुझसे मेरी मंज़िल का पता
तेरे हर नक़्शे कफ़े पा पे नज़र खो जाए

नाज़िशे वक़्त तेरे दर के भिखारी भी हुए
सरे ख़मीदा तेरी चौखट पे जहांदार आए

रिफ़अतों ने तेरे क़दमों को अक़ीदत से छुआ
औजे मिर्रीख़ व सुरैया को पसीने आए

सब नवाज़िश है तेरी तेरा करम है आक़ा
हमको दुनिया में जो जीने के सलीक़े आए

हां तेरा शायरे आवारा रईस मजबूर
हाथ ख़ाली न कहीं दर से तेरे लौट आए

इस अंक में:

ईदुल अज़्हा का पैग़ाम....3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

क़ुर्बानी की शर्त और उसके फ़ायदे....4

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

यादगार महीना....6

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

क़ुर्बानी– एक संकल्प का नवीनीकरण....7

मौलाना सईदुर्रहमान आज़मी नदवी

हज– इश्क़ व मुहब्बत का मज़हर....9

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़्वा क्या है?....11

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

ईदुल अज़्हा की फ़ज़ीलत और हुक्म का हुक्म और मसल....13

मानवाधिकार का पहला घोषणपत्र....18

जनाब हसन कमाल

क़ुर्बानी का मक़सद....20

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

सम्पादकीय

ईदुल अज़्हा का पैग़ाम

● बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

कुर्बानी एक बहुत बड़ा अमल है, लेकिन उसी वक़्त कि जब यह कुर्बानी इख़्लास के साथ हो, कुर्बानी जब इख़्लास के साथ पेश की जाती है तो वह ज़िन्दा व जावेद बन जाती है, वरना कभी ऐसा भी होता है कि कुर्बानी पेश करने के बावजूद इन्सान गिरता रहता है और कहीं से कहीं पहुंच जाता है।

कुर्बानी की अस्ल रूह इख़्लास है, इसी से इसके अन्दर जान पैदा होती है, इसकी सबसे आला मिसाल सैय्यदना हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की है, जिनकी ज़िन्दगी कुर्बानियों से भरी हुई है, जान की कुर्बानी, माल की कुर्बानी, परिवार की कुर्बानी, लेकिन इन कुर्बानियों की अस्ल जान उनका ईमान और इख़्लास है, जिनका इत्मिनान–ए–क़ल्ब मुशाहिदे को दर्जे को पहुंच गया था, उनके इसी इख़्लास का नतीजा था कि उनकी कुर्बानियां ज़िन्दा व जावेद कर दी गईं, और उन्हीं की नहीं उनके घरवालों की अदाओं को भी इबादत की शक्ल दे दी गई।

ईदुल अज़्हा की कुर्बानी भी दरअस्ल हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की यादगार है, जब उनको हुक्म हुआ कि अपने बेटे को अल्लाह के लिए ज़िबह करें, यह सबसे सख़्त इम्तिहान था, बेटा भी इताअत शेआर (हुक्म मानने वाला) समझदार, ख़िदमतगुज़ार, नेकी के आसार माथे पर ज़ाहिर हो रहे थे, मगर अल्लाह का हुक्म था, बेटा भी इसके लिए तैयार हो गया। आज जहां पर लाखों कुर्बानियां की जाती हैं, हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) अपने बेटे को वहां ले गए, उल्टा लिटाकर अपनी जानकारी में छुरी चला दी, बेटे की मुहब्बत अल्लाह की मुहब्बत के लिए कुर्बान कर दी गई, यही मतलूब था। अल्लाह का हुक्म हुआ, फ़रिश्ता एक मेंढ़ा लेकर आया और इस्माईल (अलैहिस्सलाम) की जगह उसको लिटा दिया, हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने आंख खोली तो देखाः मेंढा ज़िबह हो चुका है और बेटा क़रीब खड़ा मुस्कुरा रहा है, अल्लाह को उनकी यह कुर्बानी इतनी पसंद आई कि क़यामत तक मुसलमानों को हुक्म हुआ कि वह कुर्बानी करें।

ईदुल अज़्हा के तीन दिनों में लाखों जानवर कुर्बान किये जाते हैं, मक़सूद सिर्फ़ जानवरों की कुर्बानी नहीं है, मक़सूद माल की कुर्बानी है, मुहब्बत की कुर्बानी है, ख़्वाहिशों की कुर्बानी है, अल्लाह तआला फ़रमाता हैः "अल्लाह को उनका गोश्त और ख़ून हरगिज़ नहीं पहुंचता, हां उसको तो तुम्हारे (दिल) का तक़वा पहुंचता है।"

यह दिलों को परखने का मक़ाम है, कुर्बानी के पीछे क्या मक़सद काम कर रहे हैं, जानवरों की कसरत और उससे ज़्यादा उसके क़ीमती होने का एहतिमाम क्यों किया जाता है? हर कुर्बानी करने वाले के लिए यह एक सवालिया निशान है।

वाक़्या यह है कि कुर्बानी के पीछे आज नाम व शोहरत का ख़्याल होता है, लोगों के बीच इज़्ज़त व शोहरत काम कर रही होती है, ज़ाहिर है कि यह कुर्बानी अल्लाह के यहां बिल्कुल कुबूल नहीं, अल्लाह तो साफ़–सुथरी चीज़ें कुबूल फ़रमाता है, हदीस में आता हैः "अल्लाह ख़ुद पाक है और पाकीज़ा आमाल को पसंद करता है।"

हम मुसलमानों की कमज़ोरी यह है कि हमारी कुर्बानियां इख़्लास से ख़ाली होती हैं, हम बड़ी दौलत लुटा देते हैं लेकिन बजाए अल्लाह की रज़ा के दुनिया के मक़सद काम कर रहे होते हैं, हम बड़ी से बड़ी मशक़्क़त उठा लेते हैं लेकिन बहुत ही मामूली मक़सद सामने होते हैं, जबकि अल्लाह तआला ने ऐलान फ़रमाया किः "और अल्लाह की रज़ामन्दी सबसे बड़ी चीज़ है।"

हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि "दिल रखते हैं लेकिन महबूब नहीं रखते" जो मुहब्बत के लाएक़ है, जिसके लिए सबकुछ लगा देना कम है, जो अस्ल महबूब बनने के लाएक़ है, उस ज़ात की तरफ़ लोगों का रुख़ होने के बजाए न जाने कहां–कहां भटकता फिरता है और कैसे–कैसे रुस्वा होता है। मुहब्बत के एहसास मौजूद हैं, कुर्बानी के जज़्बात भी हैं, लेकिन दिलों के रुख़ को दुरुस्त करने की ज़रूरत है, कुर्बानियों की सिम्त को सही करने की ज़रूरत है, जब तक हमारा क़िब्ला सही नहीं होता, मंज़िल बहुत दूर है। यही ईदुल अज़्हा का पैग़ाम है, यही कुर्बानी का पैग़ाम है और आज उम्मत को इसी की ज़रूरत है।

कुर्बानी की शर्त और उसके फ़ायदे

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

कुर्बानी का मक़सद और कुर्बानी का दर्जा और कुर्बानी की ज़रूरत और कुर्बानी की शरीअत इस्लामी नहीं बल्कि शरा–ए–इलाही है, इसलिए कुर्बानी के मुताल्लिक़ यह बात साबित है कि हर मज़हब में कुर्बानी थी, मुख़्तलिफ़ जानवरों के एहकाम थोड़े–थोड़े इख़्तिलाफ़ में ज़माने के मुताबिक़ थे, लेकिन कुर्बानी यह कद्रे मुश्तरक है तमाम मज़हबों में व दीनों में, इसको समझ लेना चाहिए, अस्ल चीज़ यह है कि अल्लाह तआला पर ईमान लाने और तौहीद के अक़ीदे का यह तबई तक़ाज़ा है बल्कि उसका मुतालबा है और उसकी हक़ीक़त व फ़ितरत में शामिल है कि अल्लाह तआला के अलावा हर चीज़ अल्लाह के ऊपर कुर्बान की जाए यानि यह लफ़्ज़ जो हम बोल रहे हैं यह क़सदन हैं, अरबी में भी यह लफ़्ज़ है थोड़े फ़र्क़ के साथ, मासवा अल्लाह जो है उसको अल्लाह पर कुर्बान किया जाए, इसको कुर्बान करने का तरीक़ा एक नहीं हो सकता मसलन किसी ख़्वाहिश का कुर्बान करना, वह कोई मुजस्सम चीज़ नहीं है कि उसके गले में छुरी फेरी जाए, औलाद को कुर्बान करना, उसके माने यह नहीं है कि औलाद को ज़िबह कर दिया जाए, महबूब चीज़ों को कुर्बान करना, मरग़ूबात को कुर्बान करना, बेकार की आदतों को कुर्बान करना, रस्म व रिवाज को कुर्बान करना, माल की चाहत और ओहदे की लालच, बड़े बनने के शौक़ को कुर्बान करना और दूसरों के मुक़ाबले में अपनी ज़ात की बड़ाई को हर क़ीमत पर बाक़ी रखने के जज़्बे को कुर्बान करना, यह सब कुर्बानी के ज़ेल में आता है, लेकिन हर चीज़ की कुर्बानी अलग–अलग होती है, हर चीज़ की कुर्बानी इस तरह नहीं हो सकती है, उनका जिस्म ही नहीं है कि उनको लिटाकर उनके गले पर छुरी फेरी जाए।

मुझे अफ़सोस है कि कुर्बानी का लफ़्ज़ इतनी कसरत से इस्तेमाल हुआ है और हमारी सियासी तहरीकों ने (लखनऊ की ज़बान में कहूंगा कि) इसकी मट्टी ऐसी पलीद की है (और इल्मी ज़बान में कहूंगा कि) इसका ऐसा ग़लत इस्तेमाल किया है कि वह अपनी ताक़त खो चुका है, कुर्बानी तो वह चीज़ है कि उसको सुनते ही बदन के रोंगटे खड़े हो जाएं, लेकिन हम कुर्बानी का लफ़्ज़ जब इस्तेमाल करते हैं तो मुलाज़िमत की कुर्बानी को और तनख़्वाह की मामूली सी कुर्बानी को इसका मिस्दाक़ समझते हैं लेकिन कुर्बानी वह बाअज़मत और मुक़द्दस चीज़ है जिसकी तारीख़ इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की कुर्बानी पर ख़त्म होती है, हर चीज़ का शजरा–ए–नसब होता है, मस्जिद का शजरा–ए–नसब हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की बनाई मस्जिद काबा यानि बैतुल्लाह से मिलता है और जिस मस्जिद का नसब मस्जिद इब्राहीमी (अलैहिस्सलाम) पर जाकर ख़त्म न हो वह मस्जिद ख़ाना–ए–ख़ुदा कहलाने की मुस्तहिक़ नहीं वह मस्जिदे ज़रार है और जिस मदरसे का शिजरा–ए–नसब सुफ़्फ़ा–ए–नबवी (स0अ0व0) पर ख़त्म न हो वह मदरसा दानिशकुदा नहीं जिहालत कदह है, तो इस तरह मैं कहूंगा कि जिस कुर्बानी का शजरा–ए–नसब इब्राहीम ख़लीलुल्लाह के ज़ब्हा–ए–ईसार व हुब्बे ख़ुदा और हज़रत इस्माईल ज़बीहुल्लाह की बेनफ़्सी व तस्लीम व रज़ा पर ख़त्म न हो वह सहीउन्नस्ब नहीं है।

अब इसमें पहली बात तो यह है कि यह इस्लाम वह है जिसके मुताल्लिक़ अल्लाह तआला फ़रमाता है:

{مِلَّةَ أَبِيكُمْ إِبْرَاهِيمَ هُوَ سَمَّاكُمُ الْمُسْلِمِينَ}

यह तुम्हारे जद्दे अमजद, तुम्हारे मूरिसे आला, दीनी मूरिसे आला इब्राहीम का मज़हब है, उनकी मिल्लत है, उन्होंने तुम्हारा नाम "मुस्लिम" रखा है और इस्लाम के माने हैं; दस्तबरदार हो जाना और कुर्बान कर देना, बेअदबी न हो तो हम कहेंगे इसके लिए ख़ास इस्तेलाह है अंग्रेज़ी में सरेन्डर कर देना यानि बिल्कुल उसके सामने बेहक़ीक़त बन जाना और किसी क़िस्म मआरज़ा न करना बल्कि अपने को हवाले कर देना और तक़ाज़े को भी इस पर कुर्बान कर देना तो कुर्बानी को यूं समझें कि मिल्लते इस्लामी में जो कुर्बानी है वह इस तरह होती है।

दुनिया की कोई क़ौम व मिल्लत ऐसी नहीं जो कुछ न कुछ मुक़द्दस मकामात न रखती हो और उसके

मानने वाले और पैरोकार किसी ख़ास मज़हबी मौक़े पर एक जगह जमा न होते हों, उन मज़हबी मक़ामात की ज़ियारत या मज़हबी सफ़र के लिए कुछ उसूल और तरीक़े और रस्म व रिवायात हैं, उसकी वजह यही है कि यह अमल फ़ितरते अमली के ऐन मुताबिक़ और ज़मीर की आवाज़ के साथ जुड़ा हुआ है। इन्सान बराबर किसी ऐसी चीज़ की जुस्तुजू और आरज़ू मे रहता है, जिससे क़रीब होकर वह अपने जज़्बा–ए–अक़ीदत व मुहब्बत की तस्कीन कर सके, वह एक ऐसा तवील और बड़ा अमल चाहता है, जिससे उसके बड़े–बड़े गुनाहों और मोहलिक ग़लतियों की तलाफ़ी हो सके और वह ज़मीर की चुभन, मज़हबी हिस की खटक और सोसाइटी की मलामत से छुटकारा पा सके, इसके अन्दर एक ऐसे अज़ीम और आम दीनी इज्तिमा की तलब पोशीदा है, जहां सिर्फ़ दीनी अख़वत और रूहानी रिश्ता कार फ़रमा हो, कोई दूसरी असास और दूसरा जज़्बा इसमें शामिल न हो।

जब हम तारीख़ पर नज़र डालते हैं तो हमें मालूम होता है कि दुनिया की कोई क़ौम और तहज़ीब का काई दौर उन मज़हबी सफ़रों, ज़ियारतगाहों और मुक़द्दस व मुतबर्रक मक़ामात से ख़ाली नहीं जहां लोग जमा होकर अल्लाह के हुज़ूर या अपने ख़ुदसाख़्ता माबूदों और देवी–देवताओं के लिए कुर्बानियां करते हैं, नज़रें मानते हैं और चढ़ावे चढ़ाते हैं।

कुर्बानी हर मज़हब में रही है, कुर्बानी के फ़ायदे आप भी समझ लीजिएः कुर्बानी का एक फ़ायदा यह है कि मरग़ूब चीज़ को ख़ुदा के रास्ते में कुर्बान करना और मरग़ूबात में बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जिनके कुर्बान करने की अल्लाह तआला इजाज़त नहीं दे सकता, इन्सानों से मुहब्बत होती है, भाई–बहन से मुहब्बत होती है, मां–बाप से मुहब्बत होती है, उस्ताद से मुहब्बत होती है, किसी से रूहानी फ़ायदा पहुंचा हो उससे मुहब्बत होती है और मुहल्ले वालों से मुहब्बत होती है, रफ़ीक़ेकार से मुहब्बत होती है, बाज़ ऐसी चीज़ें हैं जिनसे मुहब्बत है उनसे कुर्बानी मसलन किसी को अपनी शेरवानी पसंद है तो उसकी कुर्बानी क्या होगी, किसी को अपनी घड़ी पसंद है, किसी को अपना असा पसंद है तो हर चीज़ की कुर्बानी नहीं हो सकती, कुर्बानी जानवर की हो सकती है इसलिए मरग़ूबात की कुर्बानी का नुमाइन्दा बनाया, अल्लाह तआला ने मज़हर बनाया जानवर को, इसमें महबूब चीज़ की कुर्बानी का पूरा मुज़ाहिरा आ गया।

दूसरी बात यह है कि कुर्बानी के अमल में, कुर्बानी के हुक्म में, रद्दे शिर्क भी मक़सूद है, कुर्बानी के हुक्म में एक बहुत बड़ा जवास का नुक़्ता जवास का मक़सद है, वह है ऐसी चीज़ को ऐसे जानवरों को कुर्बान करना जिनको कभी न कभी किसी ज़माने में किसी क़ौम में या किसी न किसी मज़हब में मुक़द्दस समझा गया, माबूद बनाया गया और आज भी समझा जाता हो।

अर्ज़ यह कि अल्लाह तआला ने कुर्बानी में बड़ी मस्लहतें रखी हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि यह सुन्नते इब्राहीमी है, अल्लाह तआला का हुक्म है और अल्लाह तआला का हुक्म होने के बाद फिर तो कुछ सोचने की ज़रूरत ही नहीं। हासिल यह कि कुर्बानी में एक तो मरग़ूब की कुर्बानी है, एक जानवर को मरग़ूबात का नुमाइन्दा बनाकर इसको कुर्बान करना है, जिसके साथ बहुत से मफ़ादात और फ़ायदे वाबस्ता थे, इसका गोश्त लज़ीज़ है और इसमें लज़्ज़त भी है, कूव्वत भी है, ग़िज़ाइयत भी है, यह सबकुछ है, इसको हमने कुर्बान किया है और गोश्त सब तक़सीम हो गया।

दूसरी बात यह कि कुर्बानी में रद्रे शिर्क है और रद्दे शिर्क इतना बड़ा है कि किसी और चीज़ से इतना रद्दे शिर्क हो ही नहीं सकता, जिसकी परस्तिश की जा रही है, उसको उल्टा लिटाकर हम छुरी फेर रहे हैं और उसको ज़लील करके अल्लाह का नाम लेते हैं और उसको बिल्कुल बेबस बनाकर कुर्बान कर रहे हैं।

कुर्बानी की एक और हिकमत यह भी है कि उसका वजूब हर साल होता है, यह उम्र भर में एक बार करना काफ़ी नहीं है, अगर ऐसा होता तो जिन लोगों के पास बहुत दिनों का कोई जानवर होता वह उसको ही कुर्बान करके फ़ारिग़ हो जाते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है बल्कि हर साल अलग कुर्बानी वाजिब है, इस तरह हर साल जानवर के दाम भी बढ़ जाते हैं और ज़ाहिर है कि जितने दाम बढ़ते जाएंगे उतनी ही कुर्बानी की क़ीमत व अहमियत भी अल्लाह तआला के नज़दीक बढ़ती चली जाएगी कि पिछले साल जितनी क़ीमत में कुर्बानी की होगी, अगले साल उसी कुर्बानी के लिए उससे ज़्यादा क़ीमत अदा करनी होगी।

यादगार महीना

मुर्शिदुल उम्मत हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह0)

हिजरी साल का यह आख़िरी महीना है, इस महीने की बड़ी ख़ासियत यह है कि इसमें अल्लाह के बरगज़ीदा नबी हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने अपने रब के हुक्म से ताबेदारी और उसकी रज़ा के हुसूल के लिए अपने महबूब बेटे को कुर्बानी के लिए पेश कर दिया, उन्होंने यह कुर्बानी दो बार दो तरीक़े से पेश की, पहली बार जबकि हज़रत इस्माईल दूध पीते बच्चे थे, उनको उनकी मां के साथ मक्का की बंजर वादी में जहां आस–पास सूखे पहाड़ों के अलावा कुछ न था और कोई आबादी भी न थी, ले जाकर बसा दिया, उनकी बीवी ने पूछा कि आप किसके सहारे हमको यहां छोड़े जा रहे हैं? फ़रमायाः अपने परवरदिगार के सहारे छोड़े जा रहा हूं, उनको उनके रब की तरफ़ से उनकी इताअत शेआरी के इम्तिहान के तौर पर यहां छोड़ आने का हुक्म मिला, उन्होंने बेचूं–चरां इस पर अमल कर डाला, यह न सोचा कि माद्दी और दुनियावी लिहाज़ से वह अपनी बीवी और दुधमुंहे बच्चे को जो उस वक़्त तक उनका इकलौता बेटा था, ऐसी जगह छोड़े जा रहे हैं, जहां न खाने के हुसूल का कोई ज़रिया है और न पानी का कोई ज़रिया, बच्चे को प्यास लगी और पानी न मिलने पर उसकी बेचैनी बढ़ी तो मां की ममता तड़प गई और मां ने भाग–भाग कर आस पास पानी तलाशने का कोई मौक़ा तलाश किया, सामने की पहाड़ियो पर भी बार–बार चढ़ीं, हर तरफ़ निगाह डाली, फिर उतरीं फिर चढ़ीं फिर उतरीं, यह दो पहाड़ सफ़ा और मरवा की पहाड़ियां थीं, कभी एक पर चढ़ती थीं कभी दूसरे पर और उतर कर बच्चे की तरफ़ नज़र डालती थीं कि उसका अब क्या हाल है? यह उतरना चढ़ना सात बार हुआ कि उनको आख़िरकार अल्लाह की रहमत नज़र आई कि बच्चे के पैरों के सामने पानी उबलता हुआ देखा, लपक कर आईं तो पता चला कि अल्लाह की तरफ़ से पानी का पैरों के नीचे की ज़मीन से उबलने का इन्तिज़ाम हो गया और यह ख़ुदावन्दी इन्तिज़ाम भी ऐसे हुआ कि वह चश्मा "चाहे ज़मज़म" फिर जारी ही रहा, जिससे वहां के रहने वाले बराबर उससे फ़ायदा उठाने लगे और हज करने वाले लाखों की तादाद में इस पानी को लाकर बरकत हासिल करते हैं और इस तरह हज़रत इब्राहीम का अपनी बीवी और बच्चे को अपने परवरदिगार की ताबेदारी में बेसहारा छोड़ आना बेनतीजा नहीं हुआ बल्कि उनकी अपनी बीवी और बच्चे की मुहब्बत की कुर्बानी की यादगार बन गया और बीवी बच्चे महफ़ूज़ भी रहे।

फिर जब यह बच्चा बड़ा हुआ और अपने मां–बाप का सआदतमन्द और अपनी अदाओं से दोनों को ख़ुश रखने वाला बन गया, परवरदिगार का इशारा आया कि इस जवान व सआदतमन्द बेटे की मुहब्बत अपने परवरदिगार से मुहब्बत में बाधा न बने, इसको कुर्बान कर दिया जाए, हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने सर झुका कर कुबूल किया, बेटा भी सआदतमन्द और अल्लाह के हुक्म का ताबेदार था, वह भी तैयार हो गया, हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने अपने रब के हुक्म से अपने बेटे की गर्दन पर छुरी चला दी, मगर अल्लाह को बेटे की कुर्बानी के बजाए बेटे की मुहब्बत की कुर्बानी मतलूब थी, वह हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की फ़िदाइयत को अमली शक्ल में देखना चाहता था जो छुरी चला देने से हासिल हो गई, लेकिन ग़ैब से यह इन्तिज़ाम हुआ कि बजाए बेटे की गर्दन पर मेंढे की गर्दन पर छुरी चली और हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) कामयाब हुए। इन कुर्बानियों का ही सिला था कि अल्लाह तआला ने उनको अपना मुहिब और दोस्त का लक़ब अता किया। फ़रमायाः

"अल्लाह तआला ने इब्राहीम को अपना मुहिब व दोस्त बना लिया।" (सूरह निसाः 125)

फिर हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने इस मुबारक मक़ाम पर अल्लाह के घर की तामीर की और दुआ की कि अल्लाह इसको हमेशा आबाद रखे, अल्लाह तआला ने कुबूल फ़रमाया और हुक्म दिया किः (शेष पेज 8 पर...)

कुर्बानी - एक सकंल्प का नवीनीकरण

डाक्टर सईदुर्रहमान आज़मी नदवी

ईदुल अज़्हा मुसलमानों के लिये एक सकंल्प का नवीनीकरण है, जो आज से हज़ारों साल पहले अबुल अम्बिया हज़रत इब्राहीम अलै0 ने अपने रब से किया था। यही वो वादा है जो इन्सान के अपने निर्माता के साथ सही संबंध का आइनादार है और यही वो वादा है जो ख़ुदा से सच्ची मुहब्बत करने वाले बन्दों की सही पहचान है। जिस मुहब्बत के सामने दुनिया की बड़ी दौलत और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु एक कण मात्र से भी कम है, जिस मुहब्बत के लिये बाप अपने जिगर के टुकड़ की कुर्बानी देने में ज़रा भी देर नहीं करता और वो इस अल्लाही मुहब्बत के क़दमों पर अपनी आख़िरी सबसे क़ीमती चीज़ को अपने हाथों से कुर्बान कर देने के लिये बेताब हो जाता है।

ज़रा आप एक कृपालु पिता का विचार कीजिए जिसके औलाद न हो। फिर बड़ी इच्छाओं और तमन्नाओं के बाद उसे औलाद मिले और वो बेइन्तहा मुहब्बत और बेहद ताल्लुक़ ख़ातिर के साथ उसकी परवरिश करे। उसी को अपनी ज़िन्दगी का इकलौता सहारा माने। यहां तक कि वो लड़का जवान हो जाये और बाप की आंखो की ठन्डक और दिल का सुकून बन जाये और जीवन की सारी इच्छाएं उस पर केन्द्रित हो जाएं, तो अचानक उसे बच्चे को कुर्बान करने और उसको अल्लाह की रज़ा के लिये ज़िबह कर देने का आदेश मिले। फिर वो उस आदेश की पूर्ति में ज़रा भी देर न करे और वो अपने ही हाथों अपने इकलौते लड़के को ज़िबह करने के लिये तैयार हो जाये। सिर्फ़ इसलिये कि ये अल्लाह का हुक्म है। अल्लाह को अपने मुख़लिस बन्दे की ये अदा इतनी पसंद आयी कि उसने क़यामत तक के लिये मुसलमानो को इस कुर्बानी का पाबन्द बना दिया और जानवर की कुर्बानी को औलाद की कुर्बानी का दर्जा दे दिया। ये कुर्बानी दरअस्ल एक जानवर या एक दुम्बे की कुर्बानी नही है, और न अल्लाह तआला पर ये कोई एहसान है। बल्कि दर हक़ीक़त ये अल्लाह तआला से सच्ची मुहब्बत और उसकी रज़ा के सामने हर चीज़ को कमतर समझने और दुनिया की बड़ी से बड़ी दौलत को ठुकराने का एक रम्ज़ है।

ये कुर्बानी इस बात की गवाही है कि जिस तरह अल्लाह की रज़ा हासिल करने का मक़सद बग़ैर इतनी बड़ी कुर्बानी के नहीं हासिल हो सकता, उसी तरह किसी दूसरे सही मक़सद तक पहुंचने के लिये भी कुर्बानी पहली शर्त है। ये इन्सान की बड़ी नेकी है कि अल्लाह तआला कुर्बानी की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये। चाहे वो जान व माल की कुर्बानी हो या माल व पद की का त्याग, किसी छोटे उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये हो या बड़े उद्देश्य की प्राप्ति के लिये। सबसे पहली शर्त इस राह में ये है कि इन्सान में मिटने व त्याग देने का भाव हो और वो इस पर कार्यरत हो। कुरआन करीम ने इसी वास्तविकता की ओर मार्गदर्शन ये ऐलान किया है कि:

"नेकी को तुम उस वक़्त तक हरगिज़ नहीं पा सकोगे, जब तक अपनी पसंदीदा चीज़ को ख़र्च न करो।" (आले इमरानः 92)

लेकिन कुर्बानी के लिये ज़रूरी है कि अल्लाह तआला की अस्ली मुहब्बत दिल में जाग जाये। हज़रत इब्राहीम अलै0 की मुहब्बत इतनी ख़ालिस और अल्लाह से संबंध इतना सच्चा न होता तो तो वो हरगिज़ इतनी बड़ी कुर्बानी के लिये तैयार नहीं हो सकते थे, लेकिन इस इम्तिहान में उनका खरा उतरना इस बात का ऐलान था कि मोमिन की ज़िन्दगी आज़माइश से भरी हुई और हर समय कुर्बानी है। हर क़दम पर उसे इम्तिहान की मंज़िलों से गुज़रना पड़ता है। और हर मन्ज़िल उससे कुर्बानी की मांग करती है। इसलिये दिल जब ख़ुदा की सच्ची मुहब्बत से भरा हुआ होगा तो बड़ी से बड़ी आज़माइश और उसकी मांग हमेशा मामूली होगी और बेक़ीमत नज़र आयेगा। ज़िलहिज्जा का महीना शुरू होते ही कुर्बानी की याद ताज़ा हो जाती है और 10 ज़िलहिज्जा को इतिहास की ये महत्वपूर्ण घटना पूरी

इस्लामी दुनिया में दोहरायी जाती है। हर साहबे निसाब मुसलमान मर्द औरत पर कुर्बानी वाजिब होती है, और वो एक दुम्बा या उसी तरह के किसी जानवर को अल्लाह की राह में कुर्बान करके इस बात को स्वीकार करता है कि उसने अल्लाह के हुक्म के सामने सर झुका दिया और वो सुन्नत–ए–इब्राहीमी का पूरी तरह पैरोकार है।

लेकिन इस पैरवी की मांग सिर्फ़ ख़ून बहाने और जानवर ज़िबह करने से नहीं पूरी हो सकती है। जब तक हम अपनी पूरी ज़िन्दगी और ज़िन्दगी के हर–हर लम्हे को इब्राहीमी तरीक़े का पाबन्द न बनाएं, और उस तक़वे का भी प्रदर्शन न करें, जो कुर्बानी की अस्ल रूह है। कुरआन करीम में इस पहलू की तरफ़ इशारा करते हुए अल्लाह तआला ने फ़रमायाः

"अल्लाह तआला के पास कुर्बानी का गोश्त और ख़ून नहीं पहुंचता।" (हजः 37)

बल्कि अस्ल चीज़ ख़ुदा का डर है जो उसके निकट स्वीकार्य होता है। इस आयत और इससे पहले वाली दोनों आयतों में ताकीद के साथ नफ़ी आयी है। यानि ये विचार बिल्कुल ग़लत है कि इन्सान साल में एक दिन जानवर ज़िबह करके ये ख़्याल करे कि अब किसी अमल की ज़रूरत नहीं। बल्कि याचित उस कार्य में दिल का वो डर है जो ईमान वाले को हर समय रहता है और हर छोटे–बड़े काम के समय वो इसका पाबन्द रहता है। पहली वाली आयत में भी यही फ़रमाया गया है कि नेकी हरगिज़ मुतहक्किक़ नहीं हो सकती, जब तक कि महबूब चीज़ तुम कुर्बान न करो।

आज जबकि सारी इस्लामी दुनिया में कुर्बानी की ये रस्म अदा हो रही है। देखना चाहिये कि इसमें तक़वे की रूह कहां तक काम कर रही है। और हमने जिस कुर्बानी में हिस्सा लिया वह शुद्धता व प्रेम से कहां तक परिपूर्ण है। जो इसका अस्ल उद्देश्य है। इसी के साथ हमें ये भी नहीं भूलना चाहिये कि इस दीने हनीफ़ की तरफ़ इन्तिसाब होने के बाद हमारी ज़िन्दगी सरासर जद्दोजहद, कुर्बानी, त्याग व नष्ट होने का एक मज़हर बन जाती है। जिसकी मांग ये है कि हम सिर्फ़ साल में एक बार रस्मी तौर पर इस कुर्बानी में हिस्सा ले लें। बल्कि हम उससे ज़िन्दगी का वो सबक़ भी लें जो सैय्यदना इब्राहीम अलै0 ने दुनिया को दिया था और हक़ की राह में कुर्बानी की एक अज़ीम और अबदी मिसाले पेश की थी।

शेषः यादगार महीना

"और लोगों में हज का ऐलान कर दो, लोग तुम्हारे पास पैदल भी आएंगे और दुबली ऊंटनियों पर भी जो दूर–दराज़ रास्तों से पहुंची होंगी।" (सूरह हजः 27)

इस तरह साल का यह महीना अज़ीम यादगार महीना बन गया और इसी महीने पर हिजरी साल का ख़ात्मा भी होता है यानि अल्लाह तआला ने बन्दों की वफ़ादारी और उसकी मुहब्बत को हर मुहब्बत पर तरजीह मर्दे मोमिन के ईमान की आख़िरी मंज़िल है, जिस तरह इस वक़्त साल ख़त्म होता है तो उससे वाबस्ता यह जज़्बा–ए–वफ़ादारी पर मोमिन की ज़िन्दगी पूरी हुआ करे और जब यह महीना मोमिन की ज़िन्दगी के आख़िरी मराहिल में आए तो अपने अमल से और अमल न हो तो अपनी याद्दाश्त से इस वफ़ादारी की याद को ताज़ा कर ले और बन्दगी की इस रूह को अपने दिल व दिमाग़ में बसा लिया करे जो हज़रत इब्राहीम की ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ वाक़्यात में मिलती है।

इस तरह हिजरी साल का यह आख़िरी महीना मोमिन के लिए बड़ा यादगार महीना है जो ईमान परवर यादों से वाबस्ता है और वहां जाने वाला उन यादों की याद अपने अमल से करता है, (सफ़ा–मरवा) पर पानी की तलाश में हज़रत इस्माईल की मां दौड़ी थीं, हाजी भी वहां जाकर दौड़ता है, हज़रत इब्राहीम ने इबादत के लिए जो घर बनाया था, हाजी उसका चक्कर लगाता है, हज़रत इस्माईल के लिए पानी का जो चश्मा निकला उसका पानी पीता है और बरकत समझता है और हज़रत इस्माईल की कुर्बानगाह पर जाकर जानवर की कुर्बानी करता है, यह सब वह अदाएं हैं कि जिनके दिखाने का अल्लाह तआला की तरफ़ से हुक्म है और अल्लाह तआला उनके करने से ख़ुश होता है, इस तरह यह महीना यादगार महीना है, इसके बाद नए साल का महीना शुरू होता है और यह सूरतेहाल हर साल अमल में आती रहती है और मोमिन उन यादों के साथ नए साल का आग़ाज़ करता है और यह यादें उसके साथ रहती हैं और साल के ख़ात्मे के क़रीब वह नुमायां हो जाती हैं बन्दे होने की वह रूह फिर ताज़ा हो जाती है, जो मक्का मुकर्रमा में पेश आने वाले वाक़्यात से पैदा हुई।

अल्लाह तआला मुबारक करे और ईमान वालों को बार–बार हाज़िरी का मौक़ा अता फ़रमाए। आमीन!

हज इश्क़ व मुहब्बत का मज़हर

मौलाना अब्दुल्लाह हसनी रह0

हज इस्लाम के अरकानो में से है जिस पर इस्लाम की बुनियाद है। अल्लाह तआला ने सभी मुसलमानो पर जो हैसियत वाले हैं हज को ज़रूरी क़रार दिया है, ताकि वे अल्लाह के दरबार में हाज़िर हों। क्योंकि हज मुहब्बत और इश्क़ व सरमस्ती का मज़हर है। अल्लाह तआला ने इन्सानो के अन्दर जो जज़्बात रखे हैं उनके सुकून का सामान भी अल्लाह तआला ने दिया है। अगर उनके जज़्बातो के सुकून का सामान न होता तो यह दीन मुकम्मल और हर पहलू से कामिल न होता। इसीलिए अल्लाह तआला ने इस दीन को फ़ितरत के मुताबिक़ रखा है और मुकम्मल तरीक़े पर पूरे आलम के लिए अता फ़रमाया है।

इन्सानी जज़्बात के सुकून के लिए अल्लाह तआला ने अपने घर की ज़ियारत को तय किया है और यह हुक्म दिया है कि सभी लोगों पर अल्लाह के घर का हज ज़रूरी है। शर्त यह है कि वहां तक सफ़र करने के साधन हों। लेकिन अगर किसी के पास साधन होने के बावजूद हज नहीं करता तो उसके बारे में फ़रमाया गया है कि ऐसे लोगों का यह काम काफ़िराना है। जिस तरह ज़कात के सिलसिले में यह वईद है कि अगर कोई आदमी ज़कात अदा न करे तो उसके पहलुओं को आग से दाग़ा जाएगा और उसका खज़ाना उसके लिए आग बन जाएगा और उसकी ज़कात बहुत ज़हरीले सांप की शक्ल में उसको डसेगी। ऐसे ही यहां फ़रमाया कि जो शख़्स हज कर सकता है फिर भी नहीं करता है तो यह बहुत बड़ी बेवफ़ाई है, बड़ी नाशुक्री है और इस तरह की नाशुक्री करने वाले के बारे में अल्लाह तआला फ़रमाता है कि उससे मेरा भी कोई संबंध नहीं है। क्योंकि अल्लाह तआला सारे जहानो से बेनियाज़ है हाँ यह है कि अगर आप आएंगे तो आप का फ़ायदा है। खुदा का कोई फ़ायदा नही है। मालूम हुआ कि अगर कोई सच्चा इन्सान है और वह अपने जज़्बात को सही जगह पर लगाना चाहता है, तो उसको हज करना चाहिए।

हज के बारे में कहा जाता है कि हज़रत इब्राहीम अलै0 ने जब अल्लाह के घर की ज़ियारत के वास्ते हज करने की सदा लगाई थी और उस वक़्त जिन्होंने लब बैक कहा था वही लोग आज तक उसी लब बैक कहने के नतीजे में हर साल दुनिया भर के अलग–अलग इलाक़ो के लोग हज करने को जाते हैं। क्योंकि यह इब्राहीम अलै0 की आवाज़ पर लबबैक कहने का एक मज़हर है। लेकिन अस्ल में अगर देखा जाए तो मालूम होगा कि यह अल्लाह की एक आवाज़ थी जिसको आम करने का हुक्म हज़रत इब्राहीम अलै0 को दिया गया था। इसीलिए उन्होंने आवाज़ लगाई थी। यूं भी हज़रत इब्राहीम अलै0 के बारे में अल्लाह ने इरशाद फ़रमाया है : "मैं तुमको लोगो का मुक्तदी बनाता हूं।" और यही वजह है कि हज के सभी अरकानो में हज़रत इब्राहीम अलै0 की यादों ही को ताज़ा किया जाता है। जिसको पूरी दुनिया के लोग एक ही तरीक़े पर अंजाम देते हैं। क्योंकि अल्लाह तआना ने हज़रत इब्राहीम को किसी क़ौम या बिरादरी का मुक़्तदा नहीं बनाया था बल्कि तमाम इन्सानों का इमाम बनने का शर्फ़ बख़्शा था।

अल्लाह तआला ने हज के अन्दर एक मुहब्बत की चिंगारी रखी है। क्योंकि अल्लाह ही के हाथ में सबकुछ है। अगर यूं देखा जाए तो काबा सिर्फ़ एक काले कपड़े में लिपटी हुई इमारत है। लेकिन अल्लाह की कुदरत का अजब मज़हर है कि अल्लाह ने उसको ऐसा पुरकशिश बना दिया है कि बड़े–बड़े हुस्न व जमाल के पैकर भी वहां जाकर अपने जमाल व कमाल को, अपने हुस्न को यहां तक कि खुद को भी भूल जाते हैं। क्योंकि काबा हर एक को अपनी तरफ़ खींच लेता है। इसलिए कि अल्लाह तआला ने काबे के अन्दर ख़ास कशिश रखी है। क्योंकि सारी बातें निसबत से होती हैं और काबे की निसबत खुदा से है इसलिए जहां ये निस्बत आयी आदमी एकदम से कहां से कहां पहुंच गया और उसका मक़ाम इतना बुलन्द हो गया कि उस तक कोई पहुंच नहीं सकता। कोई घर उस घर का मुक़ाबला नहीं कर सकता। इसी तरह कुरआन मजीद में वही अल्फ़ाज़ हैं जो हम और आप बोलते हैं और ज़बान भी वही है जिसमें लोग बोलते हैं। लेकिन चूंकि उसको अल्लाह ने अपना कलाम बनाया है इसलिए एक ख़ास कशिश और जाज़्बियत पैदा हो जाती है। हुस्न व जमाल, रानाई व दिलरुबाई उभर कर आ जाती है। इस तरह यू तो सभी इन्सान बराबर हैं लेकिन जिसको अल्लाह ने कहाः मेरा नबी तो वहां "मेरा" कहने ही से उसका मक़ाम बुलन्द हो गया। इसी तरह किसी बन्दे को अल्लाह ने कहा "मेरा वली" तो फ़ौरन उसका मक़ाम बुलन्द हो

गया। अस्ल में उसी का नाम निस्बत है। जब अल्लाह की निस्बत किसी चीज़ को हासिल हो जाती है तो उसका मक़ाम बहुत बुलन्द हो जाता है। लिहाज़ा काबा को भी यहां वही निस्बत हासिल है।

हज़रत शाह वलीउल्लाह देहलवी रह0 ने लिखा है कि दुनिया इतनी हक़ीर और पस्त व बेक़ीमत है कि आसमान के मुक़ाबले में उसकी कोई हैसियत नहीं है। लेकिन चार चीज़े अल्लाह ने इसके अन्दर ऐसी रखी हैं कि जिसकी वजह से यह दुनिया आसमान वालों से आंखे मिलाती है और उसके मुक़ाबले में आ जाती है। जिनमें से एक काबा भी है। क्योंकि काबा ऐसा है जिसने मानो कि दुनिया को रोक लिया है। जिस तरह कश्ती लंगर अन्दाज़ हो जाती है उसी तरह दुनिया को उसने लंगरअन्दाज़ कर दिया है। इसी वजह से कुरआन में काबा को "कयामा लिन्नास" कहा गया है। इसीलिए रिवायत में आता है कि जब तक अल्लाह अल्लाह कहने वाला दुनिया में कोई शख़्स बाक़ी रहेगा, उस वक़्त तक क़यामत नहीं आएगी और काबा का सरापा मक़सद ही सिर्फ़ अल्लाह अल्लाह है। यानि तौहीद का क़ायम होना। अलबत्ता जब एक शख़्स भी ऐसा बाक़ी न रह जाएगा तो दुनिया ख़त्म हो जाएगी और उस वक़्त काबा भी उठा लिया जाएगा मानो काबा को भी उसी वक़्त तक बाक़ी रहना है, जब तक दुनिया रहेगी। मालूम हुआ कि दुनिया की बक़ा काबे से जुड़ी हुई है और यही वजह है कि जिसकी बुनियाद पर दुनिया आसमान पर रश्क करती है। लिहाज़ा अल्लाह ने हर मुसलमान पर हज को लाज़िम क़रार दिया है।

हज के हुक्म के साथ साथ अल्लाह तआला ने ये बाते भी बता दीं हैं कि जब हज अदा किया जाए तो ख़ालिस नियत के साथ करना ज़रूरी है। कोई ग़लत काम रास्ते में नही होना चाहिए। और कोई बेतकल्लुफ़ी की बातें उससे भी नहीं होनी चाहिए जिससे आम दिनों में करना जायज़ होता है।। यानि जिस तरह की बातें आदमी अपने घर में अपनी बीवी से करता है वो भी हज के सफ़र में न करे और फस्क़ और फ़िजूर की कोई बात न करे और झगड़े वग़ैर ह की बात भी न करे जिसके मना करने की वजह यह है कि उमूमन हज के दौरान चीज़ों के ज़्यादा इमकानात रहते हैं। इसलिए कि अल्लाह ने काबा के अन्दर कशिश रखी है कि इतने अर्से से वहां सारी दुनिया आ रही है और वहां मर्दों और औरतों की भीड़ होती है लिहाज़ा खुदा न ख़्वास्ता अगर वहां कोई ग़लत काम की तरफ़ मायल हो जाता है तो वहां ज़्यादा गुनाह का भी ख़तरा था। इसलिए एहतियातन बिल्कुल पाबन्दी लगा दी गयी। इसीलिए अल्हम्दुलिल्लाह आज तक ऐसा कोई ग़लत वाक़्या भी नहीं पेश आया क्योंकि वहां सारे मर्द और सारी औरतें एक दूसरे को नहीं देखते बल्कि काबे को देखते हैं और वही उनका अस्ल महबूब होता है गोया कि उस वक़्त मर्द–औरतों से मुहब्बत को और औरतें मर्द की मुहब्बत को बिल्कुल छोड़ देती है और दिल व दिमाग़ में सिर्फ़ एक ही मुहब्बत होती है वो है काबे की मुहब्बत और उसके पैदा करने वाले की मुहब्बत।

ख़ुलासा यह कि हज में तमाम लावबाली चीज़ों से दूर रहना चाहिए। और हज के दौरान कहीं भी ग़ैर का शाएबा नहीं आना चाहिए। इसीलिए जब पहले ज़माने में लोग हज को जाते थे तो किसी को नहीं बताते थे ताकि किसी तरह के दिखावे का शुब्हा भी नफ़्स के अन्दर दाख़िल न हो। लेकिन आज कल न जाने क्या क्या होता है। हालांकि यह सब बातें बिल्कुल ग़ैर इस्लामी है जिनसे इस्लाम का कोई संबंध नहीं। ग़रज़ कि हर इन्सान को चाहिए कि वो हज के लिए हर वक़्त तैयार रहे और इसका शौक़ हमेशा रहे और यह आरजू रखे कि अल्लाह के दरबार में हाज़िरी नसीब हो जाए। और जिस तरह ज़कात नमाज़ का ततम्मा है उसी तरह हज भी रोज़ा का ततम्मा है। कि रोज़े में इन्सान को अल्लाह तआला से ग़ैर मामूली संबंध पैदा हो जाता है। और उसी संबंध से सुलगी हुई चिन्गारी के नतीजे में इन्सान की लगी हुई प्यास को हज मुकम्मल सैराबी देता है। लिहाज़ा जब इन्सान अल्लाह के दरबार में हाज़िरी देता है तो उसकी मुहब्बत की प्यास बुझ जाती है और उसकी बेचैनी की कैफ़ियत भी ख़त्म हो जाती है।

हज में हर व्यक्ति की कोशिश यह होनी चाहिए कि उसका दिल भी अदाए इब्राहीमी के नतीजे में इब्राहीमी बन जाए। वह ग़ैरुल्लाह को बिल्कुल छोड़ दे और जो वाक़्यात हज़रत इब्राहीम अलै के साथ उनकी ज़िन्दगी में पेश आए उनको बार–बार ज़हन मे ताज़ह करता रहे कि आपने किस तरह अपने आराम को छोड़ा था और तकलीफ़ वाले इलाक़े में तश्रीफ़ ले गए थे और गैरुल्लाह से मुहब्बत को त्याग दिया था और सिर्फ़ अल्लाह से मुहब्बत को तरजीह दी थी। यहां तक कि अपने घर वालों को भी छोड़कर अल्लाह को अख़्तियार किया था और इस पर उनके लिए अल्लाह तआला की तरफ़ से कैसी ग़ैर मामूली मदद आयी थी लेकिन हक़ीक़त यह है कि उन तासुरात का इस्तख़ार आम तौर पर बहुत मुश्किल होता है।

तक़्वा क्या है?

सैय्यद बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

तक़्वा–गुनाहों से माफ़ी का ज़रिया

सूरह तलाक़ में तक़्वा का फ़ायदा बताते हुए इरशाद है:

"और जो अल्लाह से डरेगा अल्लाह उसकी ख़ताओं को मिटा देगा और उसके लिए अज्र को बढ़ा देगा।" (सूरह तलाक़: 5)

ज़ाहिर बात है आदमी के अन्दर तक़्वा जब ही होगा जब वह गुनाहों से बचेगा, लेकिन बाज़ मर्तबा ऐसा होता कि जब आदमी तक़्वे की ज़िन्दगी को अख़्तियार कर लेता है तो उसके नतीजे में उसकी पुरानी ख़ताएं माफ़ कर दी जाती हैं, मानो उसने उससे पहले कोई गुनाह ही न किया हो। कुरआन मजीद में एक दूसरी जगह अल्लाह तआला ने अपने इन्तिहाई रहम व करम का तज़किरा करते हुए फ़रमाया:

"बिलाशुब्हा नेकियां बुराइयों को मिटा देती हैं।" (सूरह हूद: 114)

एक हदीस में आता है कि अल्लाह तआला क़यामत में एक शख़्स को बुलाएगा और उसको अपनी रिदाए रहमत में लेकर उसके एक–एक गुनाहों का तज़किरा करेगा कि तूने दुनिया में यह यह अमल किया था, वह दिल ही दिल में सोचेगा कि अब तो सिवाय तबाही के कुछ नहीं बचा और वह इन्तिहाई दर्जे परेशान हो जाएगा, फिर इरशाद होगा कि जा मैंने तेरे सारे गुनाह माफ़ करके उनके बदले तुझे नेकियां दे दीं, यह ख़ुशख़बरी सुनकर वह कहने लगेगा कि ऐ अल्लाह तूने मेरा फ़लां गुनाह तो शुमार ही नहीं किया, वह भी तो बाक़ी है? इसके बदले भी मुझे नेकियां अता फ़रमा।

हदीस शरीफ़ में गुनाहों को माफ़ करके नेकियों में तब्दील करने का जो तज़किरा है, उसकी वजह यह है कि आदमी के अन्दर बुनियादी तौर पर यक़ीनन नेकी का कोई ऐसा माद्दा होगा जो अल्लाह तआला के यहां मक़बूल हो। नेकी के यह माद्दे अजीब–अजीब होते हैं, बहुतों के अन्दर यह आख़िरी दर्जे की तवाज़ो होती है और उन्हें आख़िरी दर्जे में अपनी बेनफ़्सी का ख़्याल होता है, अगर वह नेकियां भी करते हैं तो यही समझते हैं कि मेरी उन नेकियों की कोई हक़ीक़त नहीं है, यह तो अल्लाह की तौफ़ीक़ थी जो मुझसे यह हक़ीर अमल हो गया, वरना मैं तो कुछ नहीं कर सकता था:

जान दी दी हुई उसी की थी
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ

हक़ीक़त में आदमी की जान अल्लाह ही की दी हुई है और उसकी सारी सलाहियतें भी अल्लाह की ही दी हुईं हैं, इसलिए अगर किसी ने कोई अमल भी कर लिया तो इस बात की हरगिज़ गुंजाइश नहीं कि उसके अन्दर यह ग़र्रा पैदा हो जाए कि यह अमल हमने किया है, अस्ल बात यह है कि अल्लाह ने तौफ़ीक़ दी तो कर लिया, अगर तौफ़ीक़ छीन ली जाती तो करना मुमकिन नहीं था। वाक़्या यह है कि अगर किसी आदमी के अन्दर यह ख़्याल पैदा हो जाए तो यही चीज़ अल्लाह के यहां बहुत बड़ी नेकी है।

मुहब्बत का फ़ायदा:

कई बार इन्सान से गुनाह हो ही जाते हैं, अलबत्ता बाज़ गुनाह ऐसे होते हैं, जो इन्तिहाई दर्जे के गुनाह होते हैं और उन पर वह इन्तिहाई दर्जे नादिम व शर्मिन्दा भी होता रहता है, अब उसकी अल्लाह के सामने शर्मिन्दगी यही मुहब्बत की अलामत है जो अल्लाह को बहुत पसंद है और मुहब्बत के बारे में हदीस में आता है कि:

"आदमी क़यामत में उसके साथ होगा जिससे उसने मुहब्बत की।"

बिलाशुब्हा यह आख़िरी दर्जे की बात है। सहाबा (रज़ि0) कहते थे कि हम लोगों को इस बशारत से जितनी ख़ुशी हुई उतनी किसी चीज़ से नहीं हुई, इसलिए कि हमें जितनी अल्लाह के नबी से मुहब्बत है उतनी किसी से नहीं, हमें यह तो यक़ीन था कि हम भी उनके साथ जन्नत में होंगे मगर यह डर था कि अल्लाह के नबी का मक़ाम कहां होगा और हम कहां होंगे? लेकिन जब यह पता चला कि आदमी को जिससे मुहब्बत होगी क़यामत में वह उसी के साथ होगा तो हम ख़ुश हो गए कि वहां भी साथ रहेगा, अलबत्ता यह तो उन्हें यक़ीन था कि अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) से उनकी मुहब्बत अपने घर वालों और औलाद से ज़्यादा है।

मुहब्बत भी अजीब चीज़ है, बाज़ मर्तबा यह आदमी को न जाने कहां से कहां पहुंचा देती है, रिवायत में है कि एक शख़्स के बारे में बड़ी बातें बयान की जाती थीं कि वह ऐसी–ऐसी ग़लतियां करता है, लेकिन उसके बारे में आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि उसको छोड़ दो, बेशक वह अल्लाह और उसके रसूल से मुहब्बत करता है।

बहुत सी रिवायतों में इस तरह के अल्फ़ाज़ भी मिलते हैं कि आप (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमायाः इसकी यह मुहब्बत उसको बुराई से रोक देगी।

मालूम हुआ अगर कोई आदमी हज़ार बार ग़लतियां करके भी अल्लाह के दरबार में हाज़िर हो, लेकिन उसको अल्लाह और उसके रसूल से सच्ची मुहब्बत हो और उसके साथ उसकी कुछ नेकियां भी हों और इस हाल में वह अल्लाह की बारगाह में पहुंचे तो अल्लाह को उस पर शफ़क़त आएगी, इसलिए कि अल्लाह ही की सब मिल्कियत है, वह जिसको चाहे माफ़ कर दे और जिसका चाहे मुआख़िज़ा कर ले, चाहे बड़ा से बड़ा आबिद व ज़ाहिद और अल्लाह का बरगज़ीदा बन्दा हो, अगर अल्लाह को उसका अमल पसंद न आए तो कुछ नहीं और ख़्वाह बड़े से बड़ा फ़ासिक़ व फ़ाजिर हो लेकिन अगर उसकी एक निगाह पड़ जाए तो क्या कहने?!

अजब का नुक़सानः

ख़तरे की बात उस शख़्स के लिए है जिसके अन्दर यह एहसास पैदा हो जाए कि हमारे अन्दर कुछ है, हम इल्म वाले हैं, हमारे पास तक़वा है, हम बड़े आबिद व ज़ाहिद हैं, यह बड़ी ख़तरनाक बात है। हदीस में आता है कि एक शख़्स ने सत्तर साल इबादत की, एक दिन उसको अजब पैदा हो गया कि मैं सत्तर साल लगातार इबादत करता रहा। हदीस में आता है कि फिर उसके सामने यह मंज़र हुआ कि क़यामत में लक़ व दक़ मैदान में वह खड़ा है और प्यास की शिद्दत ऐसी कि लगता था ज़बान बाहर आ जाएगी, एकदम से उसके सामने ठंडे पानी का कटोरा आया, वह दौड़ा कि यह पानी मुझे मिल जाए, जिसके पास पानी था वह बोला यह पानी फ़्री में नहीं है बल्कि इसकी क़ीमत है, आदमी ने कहाः जल्दी क़ीमत बताओ, मैं प्यास की शिद्दत से मरा जा रहा हूं। उसने कहाः इसकी क़ीमत सत्तर साल की इबादत है। वह बोलाः मेरे पास सत्तर साल की इबादत मौजूद है तुम उसको ले लो मगर यह पानी का कटोरा मुझे दे दो। जब उसने पानी पी लिया तो एक आवाज़ आई कि हमने ऐसे न जाने कितने कटोरे दुनिया में पिलाए थे उसकी क़ीमत तुम कहां से दोगे? यह सुनकर वह रोने लगा कि ऐ अल्लाह! बस तेरी ही रहमत का सहारा है तू बख़्श दे।

मालूम हुआ कि अगर हमारी इबादतें और ज़ुहद और हमारे आमाल क़ुबूल हो जाएं तो सबकुछ है वरना कुछ भी नहीं। इसीलिए आदमी के अन्दर तक़वे का मिज़ाज पैदा होना ज़रूरी है, इसके ज़रिये आदमी के अन्दर बेनफ़्सी पैदा होती है और अल्लाह की रहमत से ज़्यादा से ज़्यादा उम्मीदें क़ायम होती हैं और अल्लाह की रहमत ही अस्ल है, जिसके नतीजे में अल्लाह की मुहब्बत हासिल होती है और यह वह शय है कि उसके ज़रिये बाज़ मर्तबा अल्लाह के यहां हमारे मामूली आमाल भी बख़्शिश का ज़रिया बन जाते हैं...

....(शेष पेज 17 पर...)

ईदुल अज़्हा की फ़ज़ीलत और कुर्बानी का हुक्म और मसले

दुनिया की हर क़ौम और हर मज़हब का साल में कोई न कोई त्योहार ज़रूर होता है। इन्सानी फ़ितरत इसकी मांग भी करती है कि साल में ख़ुशियों के इज़हार का भी कोई दिन होना चाहिये। इसीलिये दीन–ए–फ़ितरत इस्लाम में भी इन्सानी फ़ितरत की रिआयत रखी गयी है और साल में दो दिन ख़ुशियां मनाने के भी तय किये गये हैं। अबूदाऊद में हज़रत अनस बिन मालिक (रह0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0व0) मदीना तश्रीफ़ लाये तो मदीना वालों को देखा कि उन्होंने साल में खुशियां मनाने के दो दिन तय कर रखे हैं, आप (स0अ0व0) ने पूछाः "ये कैसे दो दिन हैं?" सहाबा किराम (रज़ि0) ने अर्ज़ कियाः जाहिलियत के ज़माने में हम उन दोनों में खेल–कूद किया करते थे, रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "अल्लाह ने उन दिनों के बदले में उनसे बेहतर दो दिन तुमको दिये हैं, ईदुल अज़हा और ईदुल फ़ित्र।"

इनमें से ईदुलफ़ित्र रमज़ानुल मुबारक के बाद मनायी जाती है। जब अल्लाह के हुक्म से अल्लाह के बन्दे पूरे एक महीने तक ख़ास वक़्त में खाने–पीने और शारीरिक इच्छाओं से परहेज़ करते हैं। दूसरी ईद यानि ईदुल अज़हा ज़िल्हिज्जाह की दस तारीख़ को मनायी जाती है। यही हज का ज़माना भी होता है। हज और कुर्बानी के लगभग काम हज़रत इब्राहीम, हज़रत हाजरा और हज़रत इस्माईल (अलै0) की अलग–अलग कुर्बानियों और कामों की याद में मनाये जाते हैं। लेकिन दोनों ईदों में समान चीज़ यह है कि इसमे दूसरी क़ौमों के त्योहारों की तरह कोई शोर व गुल बिल्कुल नहीं है। दोनों में जो काम बताये गये हैं, उनमें इस्लाम की सादगी की झलक मिलती है। इन खुशी के मौक़ो पर भी बन्दे अल्लाह की बड़ाई का नारा लगाते हुए बस्ती के बाहर ईदगाह या किसी मस्जिद में जाते हैं और अल्लाह के सामने दो रकआत नमाज़ अदा करके अपनी बन्दगी का इज़हार करते हैं। मानों ईद की नमाज़ मुसलमानों की खुशी मनाने का नमूना हैं। मुसलमानों से मांग यही है कि ख़ुश के मौक़े पर भी अल्लाह के सामने सर झुका दें और उसके हुक्मों के सामने भी सर झुका दें। ईदुल अज़्हा के मौक़े पर ईद की नमाज़ के अलावा ज़िल्हिज्जा के शुरू के दस दिन की अहमियत व फ़ज़ीलत भी अलग से बयान की गयी हैं। इसीलिये बुख़ारी में हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "इन दस दिनों से बेहतर दूसरे कोई भी ऐसे दस दिन नहीं है जिनमें अल्लाह को नेक अमल ज़्यादा महबूब हों। सहाबा ने पूछाः अल्लाह के रास्ते में जिहाद भी नहीं? आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया, अल्लाह के रास्ते में जिहाद भी नहीं सिवाये उस शख़्स के जो अपनी जान व माल के साथ निकला हो और उसमें से कोई चीज़ भी वापस न लाया हो, और तिरमिज़ी और इब्ने माजा की रिवायत में है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमायाः अल्लाह तआला की इबादत का ज़िल्हिज्जा के दस दिनों से बेहतर और कोई ज़माना नहीं है, उनमें एक दिन का रोज़ा एक साल के रोज़ों के बराबर और एक रात में इबादत करना शब क़दर में इबादत करने के बराबर है।"

कुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने सूरह फ़ज्र में जिन दस रातों की क़सम खाई है मुफ़स्सिरीन फ़रमाते हैं, इन दस रातों से ज़िल्हिज्जा के पहले अशरे की रातें ही मुराद हैं। इनमें ख़ास तौर पर ज़िल्हिज्जा की नवीं तारीख़ की बड़ी फ़ज़ीलत आयी हुई है। मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत अबू क़तादा (रज़ि0) की हदीस में है किः "अरफ़ा का रोज़ा रखने पर मेरा अल्लाह पर गुमान यह

है कि उसे पिछले एक साल और आगे के एक साल के गुनाहों का कफ़्फ़ारा बना देगा।" लेकिन अरफ़ा के रोज़ों की ये फ़ज़ीलत ग़ैर हाजियों के लिये है। हाजियों को इस रोज़े से मना कर दिया गया है ताकि अरफ़ात के मैदान के काम अच्छी तरह अन्जाम दे सकें। इसीलिये अबूदाऊद में अबूहुरैरा (रज़ि0) की रिवायत आयी है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) मक़ाम–ए–अरफ़ात में अरफ़ा का रोज़ा रखने से मना कर दिया है।

कुर्बानीः ज़िल्हिज्जाह के महीने में सबसे अहम इबादत कुर्बानी है। इसीलिये हज़रत आयशा (रज़ि0) फ़रमाती हैंः नबी करीम (स0अ0व0) ने इरशाद फ़रमायाः "आदम की औलाद नहर के दिन जो अमल करती है उनमें अल्लाह को सबसे ज़्यादा महबूब ख़ून बहाना (कुर्बानी करना) है। वो जानवर क़यामत के दिन अपनी सींगों, बाल और खुरों के साथ आयेगा और ख़ून ज़मीन पर गिरने से पहले ही अल्लाह के यहां मक़बूलियत हासिल कर लेता है, लिहाज़ा उसको ख़ुशदिली से किया करो।" (तिरमिज़ी, इब्ने माजा) साहिब–ए–निसाब पर कुर्बानी करना हनफ़ी मसलक के नज़दीक वाजिब है। इसीलिये कि हदीस में नबी करीम (स0अ0व0) का इरशाद नक़ल किया गया है किः "जिसके पास वुसअत (माल) हो और कुर्बानी न करे वो हमारी ईदगाह के पास न आये।"

कुर्बानी का निसाबः कुर्बानी हर अक़्ल वाले बालिग़, मुक़ीम मुसलमान पर वाजिब होती है। शर्त यह है कि वो साढ़े बावन तोला (612 ग्राम) चांदी या उसकी क़ीमत का मालिक हो और यह कि उसकी ज़रूरी ज़रूरतों से ज़्यादा हो या व्यापारिक माल की शक्ल में हो या आवश्यकता से अधिक घरेलू सामान या रहने के मकान से ज़्यादा मकान हो। कुर्बानी और ज़कात के निसाब में एक फ़र्क़ ये भी है कि ज़कात में साल गुज़रने की शर्त होती है, लेकिन कुर्बानी में साल गुज़रने की शर्त नहीं है। कुर्बानी के ज़माने में निसाब का मालिक है तो कुर्बानी वाजिब होगी।

कुर्बानी के दिनः कुर्बानी के तीन दिन हैं 10, 11 और 12 ज़िलहिज्जा। इनमें से अफ़ज़ल पहले दिन कुर्बानी करना है। अलबत्ता जहां ईद की नमाज़ जायज़ होती है वहां ईद की नमाज़ से पहले कुर्बानी करना जायज़ नहीं है। इसलिये बुख़ारी व मुस्लिम में हज़रत जन्दब की रिवायत है फ़रमाते हैंः नबी करीम (स0अ0व0) ने नहर के दिन नमाज़ पढ़ाई, फिर ख़ुत्बा दिया, फिर कुर्बानी की और इरशाद फ़रमायाः जिसने नमाज़ पढ़ने से पहले कुर्बानी की थी वो इसकी जगह दूसरी कुर्बानी करे और जिसने कुर्बानी नहीं की थी वो अल्लाह का नाम लेकर कुर्बानी करे।

कुर्बानी के जानवरः कुर्बानी सिर्फ़ ऊंट, गाय, भैंस, बकरी, दुम्बा, भेड़ (नर–मादा दोनों) की जायज़ है। बक़िया जानवरों की जायज़ नहीं है। इसमें भी हदीस शरीफ़ में यह शर्त लगायी गयी कि मुसन्ना हो और ऐबों से ख़ाली हो। इसीलिये मुस्लिम शरीफ़ में हज़रत जाबिर (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "सिर्फ़ मुसन्ना की कुर्बानी किया करो यहां तक कि तुम पर तंगी हो तो भेड़, दुम्बा का छः माह का या उससे ज़्यादा का जानवर ज़िबह कर लिया करो।"

इन जानवरों में से हर एक का मुसन्ना अलग–अलग होता है। इसीलिये ऊंट का मुसन्ना वो है जो पांच साल पूरे कर चुका हो। गाय और भैंस का मुसन्ना वो है जो दो साल पूरे कर चुका हो और बकरी और भेड़ और दुम्बा का मुसन्ना वो है जो एक साल पूरे कर चुका हो। लेकिन जैसा कि हदीस में गुज़रा है, दुम्बा अगर छः माह या उससे ज़्यादा का हो तो उसकी कुर्बानी की जा सकती है।

भेड़, बकरी की कुर्बानी सिर्फ़ एक व्यक्ति की तरफ़ से हो सकती है जबकि ऊंट व गाय इत्यादि में सात लोग शामिल हो सकते हैं, लेकिन शर्त ये है कि किसी का हिस्सा सातवें हिस्से से कम न हो और सबकी नियत कुरबानी की हो।

ऐबों की तफ़सीलः रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ऐबों से पाक और उम्दा जानवरों की कुर्बानी फ़रमाया करते थे और उम्मत को भी ऐबों से पाक, उम्दा जानवरों की

कुर्बानी की ताकीद फ़रमाया करते थे। हज़रत अली (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने हमको हुक्म दिया कि जानवर की आंख कान का जायज़ा लें और कान कटे–फटे और कान मे सूराख़ वाले जानवरों की कुर्बानी न किया करें। (अबूदाऊद, नसाई, इब्ने माजा)

अबूदाऊद, नसई और इब्ने माजा ही में हज़रत बरा बिन आज़िब (रज़ि0) की रिवायत है कि नबी करीम (स0अ0व0) से सवाल किया गयाः किन जानवरों की कुर्बानी से बचा जाये? आप (स0अ0व0) ने हाथ के इशारे से फ़रमायाः चार से! वह लंगड़ा जानवर जिसका लंगड़ापन ज़ाहिर हो, वह काना जिसका कानापन ज़ाहिर हो, ऐसा बीमार जानवर जिसकी बीमारी ज़ाहिर हो, और वह लाग़र ज़िसकी हड्डियों में गूदा ही न हो।

इन जैसी हदीसों से फ़ुक़्हा ने ऐबों के बारे में निम्नलिखित तफ़्सीलें बयान की हैं:

1– अंधे, काने और लंगड़े जानवर की कुर्बानी जायज़ नहीं है। उसी तरह उस बीमार और लाग़र जानवर की कुर्बानी भी ठीक नहीं जो अपने पैरों पर कुर्बानी की जगह तक न जा पाये।

2– जिस जानवर की दुम तिहाई से ज़्यादा कटी हो उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है।

3– जिस जानवर के दांत बिल्कुल न हों या अक्सर न हों उसकी कुर्बानी भी नाजायज़ है। यही हुक्म उस जानवर का भी है जिसके कान पैदाइशी तौर पर न हों।

4– जिस जानवर की सींग पैदाइशी तौर पर न हों, या बीच से टूट गये हों, उसकी कुर्बानी जायज़ है, लेकिन अगर सींग जड़ से उख़ड गयी हो तो असर दिमाग़ तक पहुंच जाता हैं।

5– ख़स्सी (बधिया) की कुर्बानी न केवल जायज़ बल्कि अफ़ज़ल और सुन्नत है। आंहज़रत (स0अ0व0) से ख़स्सी की कुर्बानी करना साबित है।

कुर्बानी का तरीक़ाः अपनी कुर्बानी अपने हाथ से करना अफ़ज़ल है। लेकिन अगर कुर्बानी करना नहीं जानता या किसी और वजह से ख़ुद भी नहीं करना चाहता तो कम से कम ज़िबह के वक़्त हाज़िर रहने की फ़ज़ीलत ज़रूर हासिल करे। बहुत से लोग इस वजह से मौजूद भी नहीं रहना चाहते, ये रूझान सही नहीं है।

कुर्बानी के वक़्त जो दुआंए मनकूल हैं, उनका पढ़ना अफ़ज़ल है, ज़रूरी नहीं है। सिर्फ़ ज़िबह के वक़्त बिस्मिलिल्लाह अल्लाहुअकबर कहना ज़रूरी है। कुर्बानी करते वक़्त नीचे दिये गये कामों का ख़्याल रखना चाहियेः

1– ज़िबह करने से पहले जानवरों को चारा खिला दिया जाये। भूखा–प्यासा रखना मकरूह है।

2– ज़िबह की जगह सहूलत से ले जाये, घसीट कर ले जाना मकरूह है।

3– क़िब्ला रुख़ बायें करवट लिटांए, उससे जान आसानी से निकलती है।

4– छुरी तेज़ रखे, कुन्द छुरी से ज़िबह करना मकरूह है।

5– छुरी जानवर को लिटाने से पहले तेज़ कर ले और उससे छिपाकर तेज़ करे।

6– एक जानवर के सामने दूसरे जानवर को ज़िबह न करे।

7– ज़िबह के बाद जानवर के ठन्डे होने से पहले न सर अलग करे न खाल निकाले।

8– सुन्नत यह है कि जब जानवर ज़िबह करने के लिये क़िब्ला की तरफ़ लिटांए

कुर्बानी का गोश्तः अफ़ज़ल यह है कि कुर्बानी के गोश्त के तीन हिस्से कर लें। एक हिस्सा अज़ीज़ व अक़ारिब (रिश्तेदारों व मिलने–जुलने वालों) के लिये, एक फ़क़ीरों के लिये और एक अपने लिये। लेकिन यह सिर्फ़ अफ़ज़ल है। वह पूरा गोश्त भी इस्तेमाल कर सकता है और पूरा हदिया और सदक़े में भी दे सकता है। कुर्बानी को गोश्त ग़ैर मुस्लिमों को भी दिया जा सकता है। खाल अपने इस्तेमाल में ले या ग़रीबों को दे दे, लेकिन कुर्बानी का गोश्त या खाल बेची तो उसका ग़रीबों पर सदक़ा करना ज़रूरी हो जाता है।

भैंस की क़ुर्बानी का हुक्म

शरीअत ने क़ुर्बानी के जानवर तय कर दिये हैं और ये जानवर तीन हैं:

1– ऊंट

2– गाय

3– बकरी अपनी सारी ज़िन्स दुम्बा, भेड़ समेत।

इसीलिये हदीसों में इन्हीं तीन जानवरों का ज़िक्र है।

1. हज़रत उक्बा बिन आमिर (रज़ि0) से मरवी है कि नबी करीम (स0अ0व0) ने उनको भेड़ बकरियां इनायत फ़रमायी ताकि क़ुर्बानी के लिये सहाबा किराम (रज़ि0) पर तक़सीम फ़रमा दें।

(बुख़ारीः 5555)

2. हज़रत जाबिर (रज़ि0) से मरवी है कि नबी करीम (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "गाय सात लोगों की तरफ़ से और ऊंट सात लोगों की तरफ़ से काफ़ी है।"

(मुस्लिमः 2808)

अस्ल बात ये है कि क़ुरआन मजीद में क़ुर्बानी के जानवरों की तरफ़ इशारा करते हुए इन्हीं जानवरों का ज़िक्र है। इसीलिये सूरह हज में हैः "और जितने अहले शरीअत गुज़रे हैं उनमें से हमने हर उम्मत के लिये इस ग़रज़ से मुक़र्रर किया था वो इन (मख़सूस) चौपायों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उनको अता फ़रमाये थे।"

(सूरह हजः 34)

फिर उन ख़ास जानवरों की दूसरी जगह तफ़सील बताते हुए फ़रमायाः

"और ये मवेशी आठ नर व मादा (पैदा किये) यानि भेड़ व दुम्बा में दो क़िस्म नर व मादा और बकरी में दो क़िस्म नर व मादा (आगे है) और ऊँट में दो क़िस्म और गाय (में दो क़िस्म)"

(सूरह अलईनाम : 133–135)

इसीलिये उलमा मुत्तफ़िक़ हैं कि केवल उन्हीं जानवरों की क़ुर्बानी हो सकती है किसी और जानवर की नहीं हो सकती है। साहबे बदाए फ़रमाते हैं: "रही उसकी जिन्स तो वो ये है कि जानवर तीन जिन्सो बकरी, ऊँट या गाय में से हो और हर जिन्स में उसकी नू और उसका नर और मादा और ख़स्सी या सांड सब दाख़िल हैं। इसलिये कि जिन्स का उन सब पर इतलाक़ होता है।"

(बदाए सनाएः 205/4)

और अल्लामा इब्ने रुश्द (रह0) फ़रमाते हैं:

"सब इस पर मुत्तफ़िक़ हैं कि मख़सूस जानवरों के अलावा से क़ुर्बानी जायज़ नहीं है।"

(बदायातुल मुजतहिदः 430/1)

फिर उलमा का इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि ऊंट से मुराद उसकी हर क़िस्म है, चाहे वो बख़्ती ऊँट हो या एराबी, बकरी में भी उसकी सभी क़िस्म भेड़, दुम्बा, शामिल हैं, गाय की भी सभी क़िस्में उसमें शामिल हैं, इसलिये कि हदीसों में उनके जिन्सी नाम लिये गये हैं और जिन्स का इतलाक़ हर क़िस्म पर होता है।

फिर जमहूर के निकट भैंस भी गाय की ही एक क़िस्म हैं, लिहाज़ा उसकी क़ुर्बानी भी सही है। साहबे बदाए (रह0) फ़रमाते हैं:

"बकरी ग़नम की एक क़िस्म है और भैंस गाय की एक क़िस्म है, इस दलील से कि इसको बाब–ए–ज़कात में ग़नम और गाय में मिला दिया जाता है।"

(बदाए सनाएः 205/4)

अल्लामा नववी (रह0) फ़रमाते हैं:

"अज़हिया में शरब जवाज़ ये है कि जानवर अनआम में से हो यानि ऊँट, गाय और बकरी इसमें ऊंट की सभी क़िस्में बख़ाती हैं और अराब और गाय की सभी क़िस्में यानि भैंस और ख़ालिस अरबी दरबानी और ग़नम की तमाम क़िस्में भेड़–बकरी और सबकी नर व मादा बराबर हैं, (आगे है) इसमें से किसी चीज़ में हमारे यहां कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है।"

(अलमजमूअः 222/8)

मालूम हुआ कि उलमा भी इस पर क़रीब–क़रीब एक मत हैं कि भैंस गाय ही की एक जिन्स से है। किसी आयत या हदीस में ये नहीं आया है कि भैस गाय की जिन्स से है, क़ुरआन और हदीस में सिर्फ़ ये आया है कि गाय की जिन्स भी क़ुर्बानी के जानवरों में से है।

फिर जमहूर इस पर मुत्तफ़िक़ हैं कि भैंस गाय की जिन्स से है, इसके लिये कुछ हवाले दिये जा रहे हैं।

1– अल्लामा इब्ने तैमिया (रह0) फ़रमाते हैं:

"भैंस गाय के मर्तबे में से है, इब्नुल मुन्ज़िर ने उसके मुतालिक इजमा नक़ल किया है।

(फ़तावा इब्ने तैमियाः 37/25)

2– अल्लामा इब्ने क़द्दामा (रह0) फ़रमाते हैं:

भैस गायों के हुक्म में होंगी, इसमें हमें किसी के इख़्तिलाफ़ की जानकारी नहीं और इब्नुल मुन्ज़िर (रह0) फ़रमाते हैं: अहले क़लम में से जिसकी बातें याद रखी जाती हैं, उनमें से हर एक का इस पर इत्तिफ़ाक़ है और भैंस गाय की क़िस्म में से हैं, जैसा कि बख़ाती ऊंट की किस्म में से है।

(अलमुग्नी : 470/2)

3– लुग़ात में भैंस को गाय की जिन्स क़रार दिया गया है।

उलमा के इत्तिफ़ाक़ और जानवरों के माहिरों के कथनों को देखकर जमहूर भैंस की कुर्बानी के जवाज़ के क़ायल हैं। ये अलग बात है कि जिन इस्लामी देशों में सहूलत के साथ गाय की कुर्बानी हो सकती है वहां एहतियातन गाय ही की कुर्बानी होती है। भारत की विशेष स्थिति के कारण गाय की कुर्बानी मुश्किल काम है अतः भैंस की कुर्बानी से मुताल्लिक़ जमहूर के क़ौल से फ़ायदा उठाया जा रहा है, किसी को इत्मिनान न होतो वो उसकी कुर्बानी न करे लेकिन जमहूर के क़ौल के बावजूद इस मौज़ू पर बहस करना, मैं समझता हूं कि अक़्लमन्दी की बात नहीं कही जा सकती है।

शेषः तक़वा क्या है?

वरना वाक़्या यह है कि अल्लाह की सबसे ज़्यादा इबादत इब्लीस ने की थी और वह फ़रिश्तों में शामिल हो गया था लेकिन उससे एक बात ऐसी हुई कि वह रांदे दरगाह हो गया, बात वही थी कि उसे अपनी इबादत पर नाज़ पैदा हो गया कि मैं तो बहुत इबादतगुज़ार हूं, मैं तो आग का बनाया गया हूं और इस ख़ाक़ी के पुतले को मुझसे सज्दा के लिए कहा जा रहा है, ऐ अल्लाह! मुझे तूने आग से बनाया है जबकि इसको मिट्टी से बनाया है तो मैं इसको सज्दा कैसे कर लूं? वह यह भूल गया कि मुझसे कहने वाला कौन है? इसको यह ख़्याल रहा कि किसको सज्दा करने का हुक्म दिया जा रहा है मगर यह ख़्याल नहीं रहा कि कहने वाला कौन है और हमें अस्लन किसकी बात माननी है? सच्ची बात यह है कि अन्दर का तकब्बुर व तअल्ली इन्सान को तहतुस्सरा (ज़मीन के नीचे) में पहुंचा देता है और कई बार यह मर्ज़ इन्सान को आख़िरी हद तक ले जाता है, फिर भी कभी मिज़ाज में ऐसी अच्छाइयां होती हैं कि बाज़ मर्तबा गुनाहों के बावजूद भी अल्लाह को वह शख़्स पसंद आ जाता है और वह बुलन्दियों तक पहुंच जाता है।

अज्र में इज़ाफ़ाः

आयत में तक़वे की ज़िन्दगी का एक फ़ायदा यह बताया गया है कि अल्लाह तआला गुनाहों का कफ़्फ़ारा फ़रमा देता है और उसके अज्र को भी बढ़ा देता है। इसमें एक सवाल यह पैदा होता है कि आमाल पर अज्र तो तय है, तो फिर बढ़ता कैसे है? इसका जवाब यह है कि यह अज्र कैफ़ियत की बुनियाद पर बढ़ता है। एक आदमी के अन्दर एक कैफ़ियत है और दूसरा आदमी उससे आला दर्जे की कैफ़ियत रखता है, तीसरा उससे आला दर्जे की कैफ़ियत रखता है, चौथा वह है जो सबकुछ करने के बाद और उससे आख़िरी दर्जे की मुहब्बत करने के बाद भी अपने आप को बेहक़ीक़त समझता है। ज़ाहिर है अब उस शख़्स के आमाल अल्लाह के यहां ग़ैर मामूली क़ीमती होंगे और यह भी हक़ीक़त में तक़वे के मिज़ाज की ही बात है कि सबकुछ करके भी आदमी अल्लाह से डरता रहे, वह करता भी रहे और डरता भी रहे, इसलिए कि सनदे कुबूलियत तो वहीं से मिलेगी, न जाने कुबूल हो कि न हो, अगर यह मिज़ाज बन गया तो उसके अज्र में कितना इज़ाफ़ा होगा उसकी कोई हद व इन्तिहा नहीं। अल्लाह तआला का इरशाद हैः

"और अल्लाह उसके लिए अज्र को बढ़ा देगा।" (सूरह तलाक़: 5)

मानवाधिकार का पहला घोषणापत्र

जनाब हसन इक़बाल

आज पूरी इस्लामी दुनिया से मुसलमान मक्का मुकर्रमा में एकत्रित हैं और हज का फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं। ये एक ऐसा इज्तिमा है जो हर साल न केवल अल्लाह तआला से सकंल्प के नवीनीकरण का अवसर प्रदान करता है बल्कि इब्राहीम अलै0 की न समाप्त होने वाली कुर्बानी की भी याद दिलाता है। इस दिन हज़रत इब्राहीम अलै0 ने अल्लाह की इताअत में अपने बेटे हज़रत इस्माईल अलै0 की कुर्बानी पेश की थी। इससे बढ़कर इस दिन आख़िरी रसूल मुहम्मद स0अ0 का वो भाषण भी है जो न केवल मुसलमानों के लिये बल्कि पूरी दुनिया के मनुष्यों को मानवाधिकार हेतु याद आता है, जहां से जाहिलियत के युग से निकल कर पहली बार मानवाधिकार का आधार रखा गया। इसमें कोई शक नहीं "आख़िरी हज का ख़ुत्बा" का नाम दिया जाता है। इसलिये ये पहला और आख़िरी हज है जो हज़रत मुहम्मद स0अ0 ने किया और 9 ज़िलहिज्ज सन् 10 हिजरी मुताबिक़ 6 मार्च 632 ई0 को इस हज के समूह को सम्बोधित किया। ये एक एतिहासिक भाषण है और 1423 इस्लामी और 1380 ईसवी साल बीतने के बावजूद उसके महत्व, उसकी ताज़गी और उसकी ज़रूरत को उसी तरह महसूस किया जा रहा है। इस भाषण में जितनी बातें कही गयीं उन सभी बातों को पूरब व पश्चिम के फ़ुक़्हा व ज्ञानियो ने किसी न किसी रूप में बयान करके मानवता के लिये सिद्धान्तों का निर्माण किया है। आज पूरी दुनिया में अच्छे शासन व ख़ुशहाली के लिये उन सिद्धान्तों को मार्गदर्शक स्वीकारा गया है। सच तो ये है कि मुसलमान क़ौम इस भाषण के आधारभूत सिद्धान्तो व नियमो से भटक गयी है तो ही उसे ये दिन देखने पड़ रहे हैं। यदि हम आज भी इन नियमो व सिद्धान्तो की ओर लौट जाएं तो कोई कारण नहीं कि मुसलमान अपना खोया हुआ सम्मान दोबारा प्राप्त कर लें। आज इस नेक दिन के हवाले से आख़िरी हज के भाषण के बिन्दुओं को देख लेते हैं।

1. आप स0अ0 ने पहले अल्लाह तआला की हम्द व सना फ़रमायी और उसके भाषण आरम्भ किया और कहा।

2. अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। वो अकेला है। कोई उसका साझी नहीं। अल्लाह ने अपने नबी की मदद फ़रमायी और अकेले उसने सारी एकत्रित झूठी ताक़तो को पस्त किया।

3. ऐ लोगो! मेरी बात सुनो! मैं नहीं समझता कि आगे हम कभी इस तरह की महफ़िल में एकत्रित हो सकेंगे।

4. लोगो! अल्लाह का इरशाद है कि इन्सानो! हमने तुम सब को एक ही मर्द–औरत से पैदा किया है और तुम्हें समूहो और क़बीलो में बांट दिया ताकि तुम पहचाने जा सको। तुम में ज़्यादा सम्माननीय अल्लाह की नज़र में वही है जो अल्लाह से ज़्यादा डरने वाला है।

5. ऐ लोगो! किसी अरबी को ग़ैर अरबी पर और किसी ग़ैर अरबी को अरबी पर, काले को गोरे पर और गोरे को काले पर, आक़ा को ग़ुलाम पर और ग़ुलाम को आक़ा पर, कोई श्रेष्ठता या तरजीह नहीं। हाँ बुज़ुर्गी और फ़ज़ीलत का स्तर केवल तक़्वा है।

6. सारे इन्सान आदम अलै0 की औलाद हैं। अब बड़ाई और तरजीह के सारे दावे, ख़ून और माल की सारी याचनाएं और सारे बदले मेरे पाँव तले रौंदे जा चुके हैं। अब अल्लाह के घर की तौलियत और हाजियों को पानी पिलाने की ख़िदमत बदस्तूर जारी रहेगी।

7. ऐ कुरैश के लोगों! ऐसा न हो कि अल्लाह के दरबार में इस तरह आओ कि तुम्हारी गर्दनों पर

दुनिया का बोझ लदा हो और दूसरे लोग आख़िरत का सामान लेकर पहुंचे और अगर ऐसा हुआ तो मैं अल्लाह के सामने तुम्हारे कुछ काम न आ सकूंगा।

8. कुरैश के लोगो! अल्लाह ने तुम्हारी झूठी नख़्वत को ख़त्म कर डाला और बाप दादा के कारनामे पर तुम्हारे लिये गर्व की कोई गुन्जाइश नहीं।

9. ऐ लोगो! कहीं मेरे बाद गुमराह न हो जाना कि आपस में ख़ून बहाने लगो।

10. अगर किसी के पास अमानत रखवाई जाये तो वो इसका पाबन्द है कि अमानत रखवाने वाले को अमानत पहुँचा दे।

11. ऐ लोगो! हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है और सारे मुसलमान आपस में भाई–भाई हैं। अपने गुलामों का ख़्याल रखो, हाँ गुलामों का ख़्याल रखो! उन्हें वही खिलाओ जो खुद खाते हो, ऐसा ही पहनाओ जैसा तुम पहनते हो।

12. आज के दिन मैं जाहिलियत की सभी रस्में अपने पैरों तलों रौंदता हूँ और सबसे पहले अपने ख़ानदान का ख़ून माफ़ करता हूँ। मैं रबिया बिन हारिस के दूध पीते बेटे का ख़ून माफ़ करता हूँ जिसे बनू हुज़ैल ने मार डाला था।

13. ऐ लोगों! मैं ब्याज को ख़त्म करता हूं और सबसे पहले अपने ख़ानदान का ब्याज माफ़ करता हूँ और वो अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब का ब्याज है।

14. किसी के लिये ये जायज़ नहीं है कि वो अपने भाई से कुछ ले सिवाए उसके जिस पर उसका भाई राज़ी हो और वो ख़ुशी–ख़ुशी दे दे। खुद पर और एक दूसरे पर ज़्यादा न करो।

15. देखो तुम्हारे ऊपर तुम्हारी औरतों के अधिकार हैं। इस तरह तुम्हारे अधिकार उन पर वाजिबुल अदा हैं। औरतों से बेहतर सुलूक करो क्योंकि वो तुम्हारी पाबन्द हैं।

16. लोगों अपने रब की इबादत करो। पाँच वक़्त की नमाज़ अदा करो। महीने भर के रोज़े रखो। अपने मालों की ज़कात ख़ुशदिली से देते रहो। अल्लाह के घर का हज करो। और अपने अमीर की इताअत करो तो अपने रब की जन्नत में दाख़िल हो जाओगे।

17. ऐ लोगो! अब मुजरिम ख़ुद अपने जुर्म का ज़िम्मेदार होगा। अब न बाप के बदले बेटा पकड़ा जायेगा। न बेटे का बदला बाप से लिया जायेगा।

18. ऐ लोगो! सुनो जो यहां मौजूद हैं, उन्हें चाहिये कि ये हुक्म, ये बातें उन तक पहुँचा दे, जो यहाँ मौजूद नहीं हैं।

19. ऐ लोगो! मैं तुम्हारे बीच एक ऐसी चीज़ छोड़े जाता हूँ कि तुम कभी गुमराह न हो सकोगे, अगर तुम उस पर क़ायम रहे। वह है अल्लाह की किताब।

आख़िर में आप स0अ0 ने सवाल किया कि ऐ लोगो! तुम से अल्लाह के यहां मेरे बारे में सवाल किया जायेगा तो तुम क्या बताओगे? लोगो ने जवाब दिया कि हम इस बात की गवाही देंगे कि हुज़ूर स0अ0 ने दीन हम तक पहुंचा दिया और रिसालत का हक़ अदा कर दिया और हमारी भलाई की। ये सुनकर आप स0अ0 ने शहादत की उंगली आसमान की तरफ़ उठाई और लोगों की तरफ़ इशारा करते हुए तीन बार फ़रमाया। ऐ अल्लाह गवाह रहना। ऐ अल्लाह गवाह रहना। ऐ अल्लाह गवाह रहना।

सुब्हानल्लाह! यह एक ऐसा घोषणापत्र है, जीवनयापन का ऐसा सिद्धान्त है कि अगर इस पर अमल किया जाये तो दुनिया जन्नत का नमूना बन जाये। इसमें न तो नस्ल की श्रेष्ठता है। न गोरे काले का अन्तर है। न कोई श्रेष्ठ है। सब के सब एक जैसे और भाई–भाई हैं। औरतों के अधिकारों की रक्षा विशेष रूप से की गयी है कि उस दौर में औरतों को कमतर समझा जाता था। गुलामों का विचार तक़रीबन न की हद तक कर दिया गया कि उनके साथ अच्छा सुलूक और अपने जैसा रहन–सहन। इससे बढ़कर मानवाधिकार की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है। आज पूरब व पश्चिम सब ही इन नये नियमों के तहत नये समाज की स्थापना करने का प्रचार कर रहे हैं। हुज़ूर स0अ0 ने चौदह सौ साल पहले इस व्यवस्था की आधारशिला रखी थी। बतौर मुसलमान इस पर अमल करना न केवल हमारा कर्तव्य है बल्कि मुसलमान होने के नाते ये हम पर क़र्ज़ है जिसका ख़ुदा के सामने हिसाब लिया जायेगा।

क़ुर्बानी का मक़सद

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

हदीसः हज़रत अबूहुरैरा रज़ि0 से रिवायत है कि रसूलुल्लाह स0अ0 ने इरशाद फ़रमायाः जिसके पास (माल की) अधिकता हो और वह क़ुर्बानी न करे तो ऐसा व्यक्ति हरगिज़ हमारी ईदगाह के क़रीब न आये।

फ़ायदाः क़ुर्बानी अल्लाह की रज़ा को पाने का एक बेहतरीन ज़रिया और दीन–ए–इस्लाम की मांग के सामने सभी मांगों और इच्छाओं का दबाने का नाम है। इसका ऐतिहासिक क्रम हज़रत इब्राहीम अलै0 व हज़रत इस्माईल अलै0 की क़ुर्बानी से मिलता है। दीन–ए–इस्लाम में सुन्नत–ए–इब्राहीमी की इस अहम यादगार को हर साल ताज़ा करने का ताकीदी आदेश आया। जो व्यक्ति साहब–ए–हैसियत (क्षमताशील) होने के बावजूद उस सुन्नत–ए–इब्राहीमी को ताज़ा न करे तो ऐसे व्यक्ति के बारे में उपरोक्म हदीस में रसूलुल्लाह स0अ0 की ज़बान से कठोर शब्द निकले हैं। जिनसे पता चलता है कि ऐसे व्यक्तियों को उस दिन खुशी मनाने का इस्लामी अनुसार से कोई अधिकार नहीं है। हदीसों से मालूम होता है कि आप स0अ0 ने हमेशा क़ुर्बानी की। सहाबा किराम रज़ि0 ने भी इस काम की पाबन्दी की और इसको इस्लामी कार्य में गिनवाया।

दीन–ए–इस्लाम की मांग यह है कि इनसान अपनी हर चीज़ को अल्लाह पर क़ुर्बान करने वाला, उसके आदेशों के आगे बिना किसी असमंजस के झुक जाने वाला बन जाये। उसके दिल से उन सभी चीज़ों की महानता व बड़ाई निकल जाए जिस महानता व बड़ाई की अधिकारी केवल अल्लाह की ज़ात है। इसी तरह उसके दिल से उन सभी चीज़ों की वह मुहब्बत भी मिट जाये जिनकी मौजूदगी आम तौर से अल्लाह के ज़िक्र से ग़फ़लत का कारण बन जाती है। जैसे माल व औलाद की मुहब्बत। इसीलिये अल्लाह तआला ने उन सब चीज़ों को अपनी मर्ज़ी पर नुमाइन्दे के तौर पर साल में एक बार हर साहब–ए–इस्तेतात (जो क़ुर्बानी कराने की क्षमता रखता हो) "क़ुर्बानी" वाजिब की।

क़ुर्बानी इसी बात का अभ्यास होती है कि एक ईमानवाले के लिये अल्लाह तआला के आदेशों से बढ़कर न किसी धर्म में पवित्र समझा जाने वाला जानवर है, न ही उसका अपने हाथों से कमाया हुआ माल है और न ही किसी चीज़ की मुहब्बत अल्लाह के आदेश के आगे कोई अर्थ रखती है। यही कारण है कि शरई आदेशों के आधार पर इनसान अपने पैसों से एक क़ीमती जानवर ख़रीदता है। उसको खिलाता–पिलाता है और मानवीय स्वभाव के अनुसार उसका इस जानवर से लगाव भी हो जाता है मगर इसके बावजूद भी समय आने पर अल्लाह तआला के आदेश की पूर्ति के लिये केवल अपना जानवर ही नहीं ज़िबह करता बल्कि दूसरे शब्दों में अपनी इच्छाओं, प्रेम की भावना को भी क़ुर्बान कर देता है। क़ुर्बानी के इस काम से दीन–ए–इस्लाम का भी यही मक़सद है कि मनुष्य का स्वभाव हर चीज़ को अल्लाह की रज़ा को पाने हेतु त्याग देने वाला बन जाये। अल्लाह तआला का कथन हैः "अल्लाह को उनका गोश्त और ख़ून हरगिज़ नहीं पहुंचता, हा उसको तुम्हारे दिल का तक़वा पहुंचता है।" (सूरह हजः 37)

पता चला कि क़ुर्बानी का मक़सद अल्लाह की रज़ा को पाने का और त्याग की भावना का दिलों में पाया जाना है।

क़ुर्बानी के इसी अहम उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस्लामी शरीअत में हर साहब–ए–निसाब पर क़ुर्बानी वाजिब है। मगर अफ़सोस की बात है कि कुछ लोगों के अलावा आज बहुत से दीन दार लोगों की नज़रों से क़ुर्बानी का यह महान उद्देश्य ओझल होता जा रहा है। उनमें से कुछ लोग तो वे हैं जो क़ुर्बानी करते हैं किन्तु उनका मक़सद क़ुर्बानी नहीं बल्कि समाज में अपनी शोहरत होता है और बहुत से वे हैं जो ईमान वालों के वर्ग में शामिल होने और किसी भी दर्जे में दीनी लगाव के बावजूद अपने आप को उस हैसियत का नहीं समझते कि वे क़ुर्बानी में हिस्सा लें। जबकि क़ुर्बानी में ख़र्च होने वाली मामूली रक़म से कहीं ज़्यादा ईद के दिन खुशी के इज़हार की फिज़ूल की तैयारियों में वे एक बड़ी रक़म ख़र्च कर देते हैं। हक़ीक़त यह है कि इस्लामी दृष्टिकोण से ऐसे लोगों को ईद के दिन खुशी ज़ाहिर करने का कोई हक़ नहीं। यह वे लोग हैं जो अल्लाह तआला के दिये हुए माल को उसी की राह में क़ुर्बान करने से बचते हैं और अल्लाह के रसूल स0अ0 की ज़बान से निकले हुए कठोर शब्दों के बावजूद उनके सरों पर जूं नहीं रेंगती।

कुर्बानी एक और मानो दो

"लीजिए! सुन्नत–ए–इब्राहीमी के अह्या (ज़िन्दा करने) के दिन फिर हमारे सामने हैं। ज़माना आज फिर एक बार हज़ारों साल पीछे गर्दिश कर रहा है। जब अल्लाह के एक महबूब व मुख़्लिस बन्दे का इम्तिहान हुआ और बार–बार इम्तिहान हुआ और वह इस इम्तिहान से इस तरह कामयाब होकर निकला कि उसकी यादगार आजतक दुनिया के कोने–कोने में मनाई जा रही है। यह कोई रस्मी यादगार नहीं, यह सिर्फ़ गोश्त और ख़ून की यादगार नहीं, यह एक आशिक़ के दिल और नज़र और वफ़ा की यादगार है। इस बात की यादगार है कि प्यारी से प्यारी चीज़ किस ख़ूबी व जवांमर्दी, बन्दगी की किस शान, किस नाज़ व एतमाद और ख़ुशी व मसर्रत के साथ लुटाई जाती है। दुनिया की तारीख़ बहुत पुरानी है, लेकिन यादगारे इब्राहीम से बड़ी, दिलनवाज़ और ज़िन्दा व जावेद यादगार कहां से लाई जाएगी। फ़रमाया गया: {مِلَّةَ أَبِيكُمْ إِبْرَاهِيمَ هُوَ سَمَّاكُمُ الْمُسْلِمِينَ} "तुम्हारे बाप इब्राहीम की मिल्लत है जिन्होंने तुम्हारा नाम मुसलमान रखा।"

"कुर्बानी" का लफ़्ज़ हमारी डिक्शनरी में बहुत आम है और बहुत मतरूक (छूटा हुआ) हो चुका है। यानि उसकी लफ़्ज़ी तस्वीर या पैकर इतना बढ़ चुका है कि आसमान व ज़मीन की फ़िज़ाएं उसकी तकरार और उसके नारों से भर जाएं और किताबों और रिसालों के अम्बार लग जाएं लेकिन उसकी मानवी कैफ़ियत और हक़ीक़त इतनी दूर, इतनी धुंधली और नाक़ाबिले फ़हम हो चुकी है कि उसका समझना दुश्वार हो रहा है। आज "कुर्बानी के बकरों" ने हमको हर क़िस्म की अमली कुर्बानी से बेनियाज़ कर दिया है।

हमें उन बकरे–बकरियों का एहसान मन्द होना चाहिए जिनको कुर्बान कर देने के बाद हम समझते हैं कि कुर्बानी का हर मुतालबा हमने पूरा कर दिया। अब आराम व राहत का हक़ वसूल करना बाक़ी है। अब न वक़्त की कुर्बानी की ज़रूरत है, न तरीक़े व आदत की, न मेयारे ज़िन्दगी की, न फ़िज़ूल ख़र्चियों की। बहुत से मुसलमानों ने कुर्बानी के बेज़ुबान बकरे को अमलन गुनाहों का कफ़्फ़ारा समझ लिया है जो हर साल कोताहियों और मुतालबों और तक़ाज़ों का बोझ चन्द पैसों में सिरों से उतार दिया है। ईसार व कुर्बानी हर क़ौम व मुल्क की ज़रूरत है और कोई मुल्क व क़ौम इसके बग़ैर तरक़्क़ी की मंज़िलों तक नहीं पहुंच सकती, लेकिन मिल्लते इस्लामी के साथ कुर्बानी का ख़्याल इस तरह जुड़ा है कि इसको एक लम्हे के लिए इससे जुदा नहीं किया जा सकता। यहां ज़िन्दगी का सारा ढांचा कुर्बानी व ईसार पर क़ायम है।

جاهدوا بأموالكم وأنفسكم एक ऐसा उसूल व ऐलान है जिसके बग़ैर दीन की तकमील नामुमकिन है। पहले नम्बर पर माल की कुर्बानी का मुतालबा है यानि दीन की जो ज़रूरत है उसकी तकमील के लिए बे चूं–चरां तैयारी व आमादगी। अलावा इसके कि सियासी व क़ौमी शऊर और हमारी मआशी मस्लहत का भी यही मुतालबा है, यह दीन का एक ऐसा अहम सुतून है जिसके बग़ैर उसकी इमारत क़ायम ही नहीं रह सकती।

हमारे सियासी व क़ौमी और मआशी मसाएल भी दीन के ताबेअ हैं, एक सच्चे मुसलमान की निगाह में सारी ज़िन्दगी दीन से और अगर किसी के माली व सियासी मामलात गड़बड़ हैं तो उसका दीन भी मोतबर नहीं, पांच वक़्त की नमाज़ भी कुर्बानी है, रातों का रोना भी कुर्बानी है और ज़कात भी कुर्बानी है और ज़कात भी कुर्बानी है, मुसलमानों में भाईचारे की कोशिश व जद्दोजहद और उनकी तरक़्क़ी व कामयाबी की राहें सब इस मफ़हूम में दाख़िल हैं, उन सब में कुर्बानी की रूह जारी व सारी है और सब दायरा–ए–दीन के अन्दर दाख़िल बल्कि ऐन दीन हैं...!

मौलाना सैय्यद मुहम्मदुल हसनी (रह०)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 06 June 2024 Volume: 16

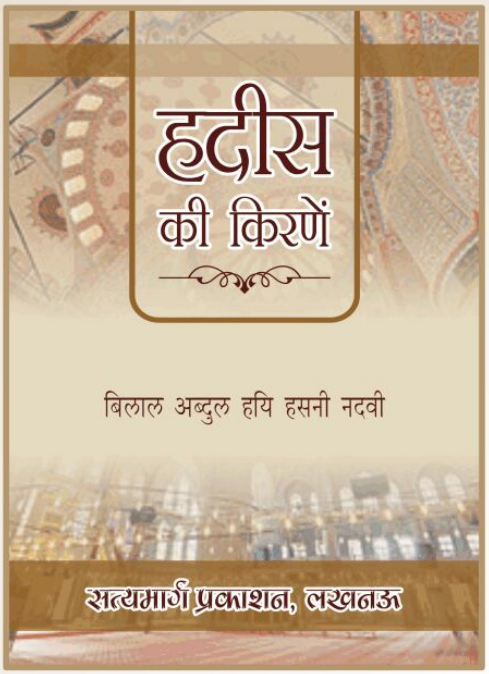

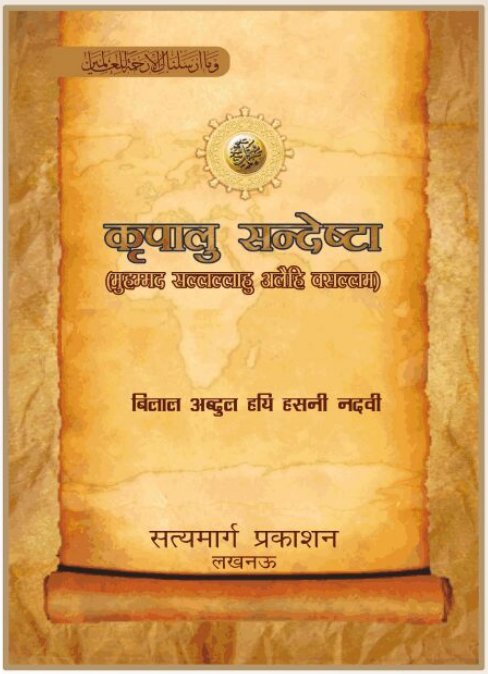

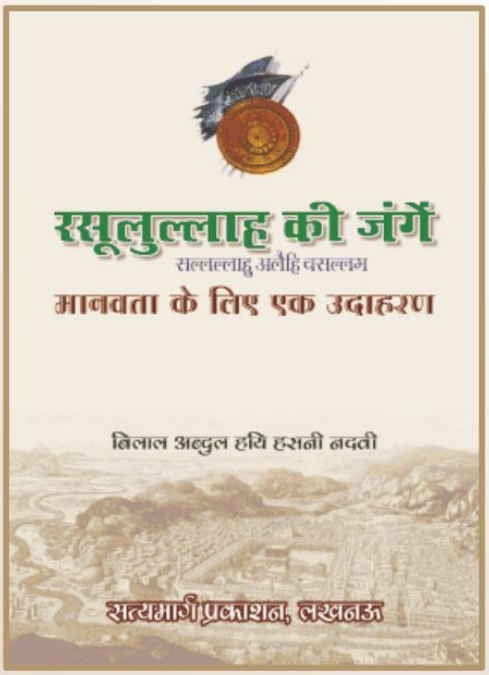

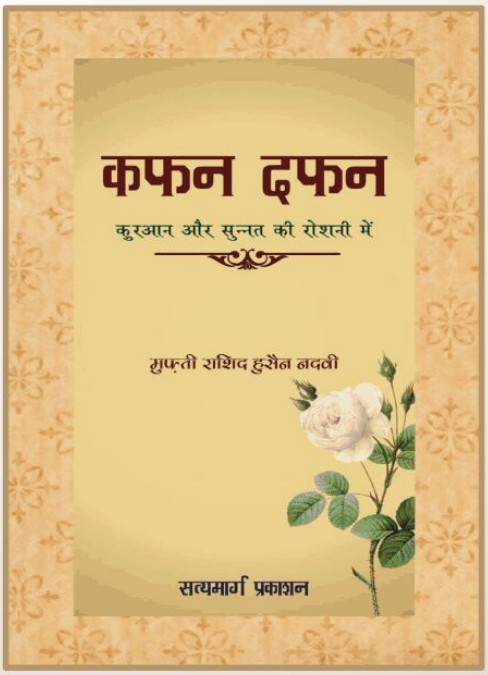

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.